

विभिन्न

# बंगला देश

## स्वतंत्रता के बाद

आमार

• चौनार

बांगला

भाषा भास्तु

भाषा भास्तु

भाषा भास्तु

भाषा भास्तु



क्षितीश मेरे साथी । सहयोगी पत्रकार । पर्यटन-प्रेमी । भारत और भारतीयता के बड़े हिमायती । विचारों में पुराने, किन्तु पकड़ नहीं ।

यह पुस्तक न उपन्यास, न संस्मरण और न यात्रा-वृत्तान्त । परन्तु मजा तीनों का एक साथ । कहानी का रस भी इसमें, संस्मरणों की सुवास भी इसमें, और यात्रा के रोचक तथा रोमांचक वृत्तान्त का तो कहना ही क्या !

बल के साथ आज के बंगला देश को समझने के लिए भी यह पुस्तक, मेरी समझ में, हिन्दी में अभी बेजोड़ है । पुस्तक के पाठक को पग-पग पर यह लगेगा कि जैसे भारत उपमहाद्वीप का इतिहास बंगला देश की भूमि पर ही लिखा जा रहा है । बाहुबल अगर पंजाब में है, तो बुद्धिवल बंगाल में । बुद्धिजीवी क्षितीश ने इस अच्छी तरह पहचान लिया । भारत की एकता की कुजो अगर राष्ट्रभाषा हिन्दी के हाथ में है, तो भारतीय उपमहाद्वीप की भावात्मक एकता को कुजी बंगला देश के पास है ।

आप पढ़ना शुरू कीजिए । अगर पुस्तक बीच में छोड़नी पड़े, तो मुझसे कहिए ।

—गोपालप्रसाद ब्यास



बंगला देश  
स्वतंत्रता के बाद



राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली

# बंगला देश

स्वतंत्रता के बाद

क्षितीश

মূল্য : বাঠ রুপি  
3.00

মালয়ালম ভাষায়
তীক্ষ্ণ কো. ১০/-
প্রজপতি এন্ড সন্স

প্রথম সংস্করণ 1976 © ক্ষিতিশ  
BANGLA DESH : Swatantrata Ke Bad  
(Travelogue), by Kshitish

## मेरे दरवेश !

मेरा एक मित्र है ।

नाम उसका कुछ भी हो, मैं उसे दरवेश कहता हूँ । दर-दर\*\*\*ज्ञेक  
चेशों में मैंने उसे देखा है ।

आज जब पुस्तक की भूमिका लिखने लगा हूँ तो उसकी याद आते  
लगी है ।

त जाने किन वियावान जंगलों में, तूफान-प्रस्त समुद्र-तटों पर, बर्फ ढके  
किन पहाड़ों की छोटियों पर हिम-मानव की तरह उसके चरण-चिह्न  
खोजियों को विकल कर रहे होंगे ! हो सकता है, वह किसी शीत या उष्ण,  
आसन्न अथवा पराभूत, बुद्ध की लपटों के आलपास चक्कर काट रहा हो ?  
कौन जाने दक्षिण अफ्रीका की बीहड़ बनानियों ने उसे मोह लिया हो !

मैं उसकी याद में वेसुष्ठ हुआ जा रहा हूँ :

नहीं आती तो उसकी याद महीनों तक नहीं आती,

मगर जब याद आते हैं तो अकसर याद आते हैं ॥

सोचता हूँ, दरवेश आज मेरे पास होता, तो पूछता—“तुम्हारी बंगला  
देश बाली याना का क्या हुआ ?”

मेरे प्रेरक दरवेश ! मैं जितना तुम्हें प्यार करता हूँ, उतना ही तुमसे  
डरता भी हूँ । यह ठीक है कि मैंने भी कैलाज से कन्याकुमारी तक और कच्छ से  
कोहिमा तक इस महादेश की खाक छानी है । भले ही तुम्हारी तरह न सही  
पर भारत के गांव-गांव, नगर-नगर, पर्वत-पर्वत, नदी-निर्झर के हर मोह से  
अपने को जोड़कर, पत्थर-पत्थर से, पेड़-पेड़ से, खंडहर-खंडहर से, पिरते दूहों  
और ढहते दिलों से मैंने कानाजाती की है ।

नहीं कहता कि मैं इतिहास का सत्पत्तोधी हूँ, नहीं कहता कि भारत  
माता के भूगोल पर मेरा भी कुछ उल्लेखनीय दावा है, परन्तु अपने छोटे-से  
जीवन के काफी क्षणों को मैंने यायावरी में जिया है, और मुनगुनामा है :

जदि तोर डाक पूने केड न आओ  
तबे एकला चलो रे, एकला चलो रे ।

प्रिय मित्र ! तुम भी मेरी तरह पत्रकार हो । मेरी तरह क्यों, मुझसे भी पुराने और समर्थ । 'सोनार बांगला' की सुरभि माता के गर्भ से ही तुम्हारे मन में बसी है । कितनी सटीक थी तुम्हारी वह टिप्पणी—'भैया रे ! हम भारतवासी तो २५ वर्ष में भ्रष्टाचार के इस स्तर तक पहुँचे हैं, पर बंगला देशवासी तो तीन वर्ष में ही हमसे आगे बढ़ गए ।'

ऐसे ही अनेक हीरक-वाक्य मेरे मुप्त मन के अन्धकार में दिनों से उजाला करते रहे हैं । कभी-कभी मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि हरेक चिन्तनशील मनुष्य अन्दर से दरवेश ही होता है ।

बंगभूमि चिरकाल से बिद्धोह और कान्ति की जननी रही है । भारत महादेश का भाष्य उसके साथ बंधा है । आज जब बंगला देश चारों ओर बाग की लपटों से घिरा है, तब मेरे दरवेश का मन फिर वहाँ पहुँच जाता है ।

तो तो, तुम्हारी बाह और मेरा स्वप्न—आज मैं पाठकों को सम्पित कर रहा हूँ । यह इतिहास होते हुए भी इतिहास नहीं, उपन्यास होते हुए भी उपन्यास नहीं । हाँ, पश्चबढ़ होता, तो शायद कुछ लोग प्रबन्ध काव्य कहने में आपत्ति न करते । पर इसे मात्र यात्रा-विवरण समझना लेखक के साथ न्याय नहीं होगा । यह तो आँखें और कान सोलकर चलने वाले तुम्हारी ही तरह के छोटे दरवेश की एक छोटी-सी कहानी है ।

पसन्द आए, तो भाष्य मेरा ! नहीं पसन्द आए, तो राय देने वालों के लिए दरवेश की ही एक दुआ है : "जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला ।"

अन्त में इतना और :

उजाले अपनी यादों के हमारे पास रहने दो ।

न जाने किस गली में जिन्दगी की शाम हो जाए ॥

## अनुक्रम

मेरे दरवेश ! (भूमिका)	५
स्वप्न की तलाश में	६
कलकत्ता से डाका	२०
चटगाँव : जो कभी कान्तिकारियों का केन्द्र था	३०
विहारी कहां गए ?	३६
अराजकता से भस्त और महंगाई से पस्त	४५
जीवट के लोग	५२
बलप्रसंस्करकों का भविष्य	६०
अर्द्धिन्द की याद में	७७
आखिर चकव्यूह से कैसे निकला ?	८८
मुजीब से मुजीब तक	९५
पटाखोप	१२०
लपटों का धेरा	१२८
विप्लवी भूमि	१३१
स्वप्न की मंजिल	१६६



## स्वप्न की तलाश में

आशिवन मास का मेरे जीवन में कदा महसूब है, मैं नहीं जानता । पर इसी मास में मेरे ताथ अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएं बटी हैं । आशिवन मेरा जन्म-मास है । शायद ज्योतिषी लोग कुछ रहस्य बताएं ।

अब से लगभग सात वर्ष पहले की बात है । यही आशिवन का महीना । अचानक एक रात मूँझे स्वप्न आया ।

पहले उस स्वप्न की बात ही आपको सुना हूँ :

चटगांव से किसी अज्ञात व्यक्ति का पत्र मुझे प्राप्त होता है । उसमें लिखा है — “तुरन्त यहां चले आओ ।”

मैं असर्वज्ञ में पड़ जाता हूँ । पत्र-लेखक कौन है, नहीं जानता । दिमाग पर काफी जोर ढालता हूँ, पर किसी भी कोने में कहीं कोई सृष्टि की रेखा नहीं उभरती ।

अबीब आदमी है । न जान, न पहचान । और लिखता है कि तुरन्त चले आओ । और फिर बुलाने का प्रयोजन ? उसका कोई संकेत नहीं । फिर चटगांव कदा आसपास है ?

उंह ! होगा कोई !

जैसे संसार में मैं ही सबसे फालतू आदमी रह गया हूँ ।

शायद किसीने जानबूझकर जांसा देने का प्रयत्न किया है । या कोई चारारत है ।

फिर अज्ञात व्यक्ति और अज्ञात स्थान !

नीतिकार कहते हैं—“प्रयोजनमनुदिदस्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते”, चिना प्रयोजन के तो कोई मूर्ख व्यक्ति भी किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता । मैं अपने-आपको मूर्ख कैसे मान लूँ ।

मैं उस पक्ष को मेज की दराज में सरका देता हूँ और उसकी ओर से बिल्कुल लापरवाह बन जाता हूँ।

पर वह पक्ष तो दराज में पड़ा-पड़ा भी जैसे मुझे इशारे से बुला रखा है। उसे दराज से निकालता हूँ। फिर पढ़ता हूँ।

पहले मन में गुस्सा आया था। फिर उदासीनता का भाव आया। तब दराज से निकालने के बाद मेज पर ही एक पुस्तक के नीचे दबाकर और उसे उलटकर रख देता हूँ—ताकि उसकी इबारत सामने न पड़े।

पर मनुष्य का मन भी कैसा विचित्र है! कोई भी भाव स्थिर नहीं रहता। शायद यही मन की विशेषता है।

धीरे-धीरे गुस्से और उदासीनता का स्थान विज्ञासा और उत्सुकता ले जाती है। आसिर उस व्यक्ति ने मुझे ही चिट्ठी बयों लिखी? संसार में और भी तो लालों-करोड़ों व्यक्ति हैं।

फिर तुरन्त जाने को लिखा है, तो जहर कोई खास बात है।

प्रयोजन का उल्लेख न होने से यही कैसे मान लिया जाए कि यह बुलाहट सर्वथा विषयोजन है!

ही सकता है—खास मेरी ही आवश्यकता हो। मुझसे ही किसी बात का संबंध हो। शायद मेरी ही भलाई का कोई प्रतंग हो। शायद समृद्धि का कोई नया ढार। शायद यश का कोई नया शत्रु।

कानून कहता है कि जब तक किसीका अपराध सिद्ध न हो जाए, तब तक उसे अपराधी नहीं माना जा सकता। यही बात आध्यात्मिकता के साथ भी है—जब तक किसी व्यक्ति की बुराई सिद्ध न हो जाए तब तक उसे बुरा नहीं माना जा सकता। इतना ही नहीं, बुराई सिद्ध होने से पहले हरेक व्यक्ति को भला ही समझना चाहिए।

आस्तिक बुद्धि भी यही कहती है कि परमात्मा जो कुछ करता है वह सब व्यक्ति के भले के लिए ही करता है। यह अलग बात है कि व्यक्ति तत्काल उस घटना में भलाई की सोज न कर सके। पर इससे परमात्मा के न्याय के प्रति मनुष्य ज़ंकालु बयों बने।

जब मनुष्य में अक्षात् संकट का सामना करने का मानसिक साहस न हो तब समझना चाहिए कि उसे बुढ़ापे ने सचमुच घेर लिया है। बहुत अधिक

फूक-फूककर कदम रखना बाध्यक-प्रस्तु मन की ही तो निशानी है।

फिर ज़ज़ात में सदा एक दिल्ली आकर्षण होता है। इस आकर्षण के प्रति दीवानगी ही चिरयीजन है। वह ज़ज़ात ही चिरकाल से मानव को हिमालय के सर्वोच्च शिखर के प्रति, समुद्रों की अगाध गहराइयों के प्रति, चन्द्रमा के घरातल के प्रति और प्रकृति के अन्तराल में छिपे नाना रहस्यों की खोज के प्रति आकर्षित करता रहा है।

पता नहीं, ज़ज़ातनामा व्यक्ति के उस अप्रत्याशित और अनाहृत पन्न में ऐसा क्या आकर्षण था कि अकस्मात् असमंजस की स्थिति समाप्त हो जाती है और मैं सब कुछ ज्यों का त्यों छोड़-छाड़ कर और धर-परिवार में बिना किसीसे कुछ कहे-सुने स्टेशन की ओर चल देता हूँ।

स्टेशन पहुँचकर टिकट बाली लिड़की के सामने लाइन में लड़े होने पर फिर असमंजस। कहाँ का टिकट लूँ। चटगांव पहुँचने का रास्ता कौन-ता है, यह भी नहीं जानता।

टिकट बाला बाबू पूछता है—कहाँ का टिकट दूँ?

मैं बगले जांकने लगता हूँ।

लाइन में मुझसे पीछे लड़े व्यक्ति भी मेरी इस हरकत पर हैरान होते हैं।

—बोलते व्यों नहीं, कहाँ का टिकट लेना है?

—अगर टिकट नहीं लेना है तो खिड़की छोड़िये।

—साहब, जल्दी करिए, हम भी लड़े हैं टिकट की प्रतीक्षा में।

इस तरह लोगों के बाब्बाओं से मन जाहृत होता है। पर कहाँ का टिकट लूँ, यह समझ में ही नहीं आता।

तभी एक ज़ज़ात ध्वनि मेरे कानों में पड़ती है—

“हाँ, हाँ, कलकत्ते का ही टिकट लो।”

मैं अपने जारों और नज़र दौड़ाता हूँ कि यह ध्वनि कहाँ से आई। पर मुझे कोई दिखाई नहीं देता।

और मैं सचमुच कलकत्ता का टिकट लरीद लेता हूँ।

इसके बाद मैं कैसे कलकत्ता पहुँचा, वहाँ से फिर कैसे अगरतला पहुँचा, और अगरतला से कैसे चटगांव पहुँचा—इसकी कोई तफसील स्वप्न में नहीं है।

हाँ, इतना अवश्य है कि जब मैं चटपांच पढ़ूँचता हूँ तो वही व्यक्ति मुझे प्रतीक्षा करता नजर आता है जिसने मुझे पत्र लिखा था।

मैं उसे नहीं पहचानता। पर मुझे देखते ही वह कहता है—“अच्छा, तुम आ गए?”

मैंने कहा—“हाँ, मैं आ तो गया। पर तुम कौन हो, और यहाँ मुझे क्यों बुलाया है, यह मैं कुछ नहीं समझ सका।”

उसने छूटते ही कहा—“अरे, मुझे नहीं पहचानते? मैं वही तो हूँ तुम्हारा चिर-परिचित सु…………”और यह कहकर उसने वही नाम दूहरा दिया जो मुझे भेजे गए पत्र के अन्त में लिखा था। उसने कहा—“मैं जानता था कि तुम अवश्य आओगे।”

मैं फिर असर्मजस में।

मैं उसकी मुख्कांडति की छवि को अपने मानस-पटल की प्रयोगशाला में उतार कर उसका विश्लेषण करूँ—इससे पहले ही उसने कहा—“चतो मेरे साथ।”

मैं किसी जादू के बोर से बंधा उसके पीछे-पीछे चल पड़ता हूँ।

धीरे-धीरे उसकी मुख्कांडवि का पांजिटिव चित्र आँखों से ओक्सल हो जाता है और नेपेटिव चित्र दिमाग में उभरने लगता है।

मुझे लगता है कि इस पांजिटिव छवि को मैं भले ही न पहचानता हूँ, पर इसकी नेपेटिव छवि तो मेरी जानी-पहचानी है और हम दोनों कुछ काल से ही नहीं, बल्कि जन्म-जन्मान्तर से सुपरिचित हैं।

सामने रुक कर आगे-पीछे दो टूक लड़े हैं। दोनों में पटसन लदा है। पीछे वाले टूक पर दस-बारह आदमी सवार हैं। आगे वाले टूक पर हम दोनों उछलकर चढ़ जाते हैं।

हमारे चढ़ते ही टूक चल पड़ते हैं। आगे हमारे वाला टूक और पीछे दूसरा।

टूक चलते जाते हैं।

चलते जाते हैं।

चलते जाते हैं।

पता नहीं, किस अन्नात स्थान की ओर हम चले जा रहे हैं।

मेरा ध्यान सड़क के दोनों ओर वसी बस्तियों पर जाता है। कल्पे-पक्के मकानों की कातारें। कहीं चाष की दुकानें। कहीं ढोटा-मोटा बाजार। कहीं नंगा-घड़ंग चेलते बच्चे। कहीं-कहीं रंग-विरंगी लुंगी पहने आदमियों के जमघट। नेहरे पर भोलापन, शरीर की रंगत में मिट्टी के रंग की झलक, आँखों में चंचलता और अक्सर स्थान-स्थान पर मछली की गन्ध। हाँ, औरतों का सर्वेषा अभाव बिना ध्यान खींचे नहीं रहता।

सड़क के दोनों ओर पानी का जलाव देखकर बाढ़ का-सा दृश्य लगता है।

और ट्रक चलते जा रहे हैं।

सहस्रा एक स्थान पर हम दोनों ट्रक से उतर पड़ते हैं।

ठिगने कद का वह व्यक्ति फिर अगुआ बनता है।

अब पैदल चलने की बारी है।

दोनों ट्रक बहीं से बापस लौट जाते हैं। पिछले ट्रक में वे १०-११ आदमी हमारे साथ किसलिए आए थे, यह स्पष्ट नहीं हो पाता।

सोचता हूँ, याथद हमारे अंगरक्षक बनकर आए थे और हमको अमुक स्थान पर पहुँचाकर बापस चले गए।

पर हमें अंगरक्षकों की जरूरत क्यों होती?

क्या किसी ऐसे संकट की आज़मांका थी जिसके निवारण के लिए उनकी उपस्थिति बाबश्यक रही हो?

कौन जाने!

वियावान जंगल के अज्ञात रास्तों से हम पैदल बढ़ते जा रहे हैं। मु... आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे।

जंगल खत्म हुआ। एक बार आ गया। हमारा पैदल चलना जारी रहा।

बार में ऊँची-लम्बी धास। इतनी ऊँची कि उसमें आदमी तो क्या, हाथी भी छिप जाए तो पता न लगे।

हम दोनों रेंगते हुए-से उस धास में से अपना रास्ता बनाते आगे बढ़ते जा रहे हैं।

बाय खत्म, धास भी खत्म ।

फिर चारों ओर पानी ही पानी ।

हम दोनों उस पानी में उत्तर पढ़ते हैं । पहुँचे घुटने जितना पानी । फिर और-और पानी की गहराई बढ़ती जाती है — कमर तक, नाभि तक, फिर छाती तक ।

उसके बाद लकड़ी की बाढ़ ।

लकड़ी की बाढ़ के बाद फिर पानी ।

पर अब पानी घुटने जितना या छाती जितना नहीं, मुरु से ही इतना गहरा कि तैरने के बिना मर्ति नहीं ।

हम दोनों तैरने लगते हैं और आगे बढ़ते जाते हैं ।

तैरते जाते हैं और आगे बढ़ते जाते हैं ।

उस गहरे जल की खाई के बाद एक किलेनुमा चहारदीवारी आती है और उस चहारदीवारी के बीचोंबीच एक मन्दिर अपना सिर ऊंचा किए सड़ा दिखाई देता है ।

किसी तरह उस चहारदीवारी को लांपकर हम मन्दिर के आंगन में पहुँचते हैं । स्थान सर्वथा मुनसान है, न कोई आदमी, न आदमजात । मन्दिर के कपाट बन्द हैं । और मन्दिर के अन्दर प्रवेश का कोई मार्ग नहीं ।

मन्दिर की छत के पास एक सीढ़ी-सी है, पर उस सीढ़ी तक पहुँचने का भी कोई रास्ता दिखाई नहीं देता ।

उस सीढ़ी के सामने एक गोल रोशनदान है ।

क्या इस रोशनदान के रास्ते से मन्दिर के अन्दर प्रवेश नहीं किया जा सकता ?

पर जब सीढ़ी तक पहुँचने का ही उपाय नहीं, तो रोशनदान तक पहुँचने की बात सोचना भी बेकार है ।

मैं किकर्त्तव्यविमूढ़ ।

किस भूलभूलैया में फँस गए ?

तभी साथी मु... को दाईं ओर की दीवार में लगा एक हत्था दिखाई देता है ।

वह हृत्या पकड़कर घुमाता है तो सशरीर सीढ़ी पर ।

आंखों ही आंखों में, बिना कुछ बोले, वह मुझे अपने पीछे चले जाने का इचारा करता है ।

मैं भी दीवार में लगा हृत्या घुमाता हूँ, तो मैं भी सीढ़ी पर ।

फिर मु\*\*\* गोल रोशनदान के अन्दर अपना सिर घुमाता है तो आगे एक और रोशनदान नजार आता है । पर यह रोशनदान आयताकार है । इस नवे रोशनदान में पांचों के बल जाना ही संभव था ।

उस आयताकार रोशनदान के पास ही मन्दिर के घंटे की जंजीर लटक रही है ।

मु\*\*\* आयताकार रोशनदान में से होता हृजा बन्दर की तरह छलांग लगाकर घंटे की जंजीर पकड़ लेता है और उसके सहारे वह धीरे-धीरे मन्दिर के गर्भगृह में उतर जाता है ।

मैं आंखों में आश्चर्य लिए यह सब तमाशा-सा देखता रहता हूँ और फिर यही सब जिमनास्टिक मैं भी अपनाता हूँ ।

मन्दिर में सिहवाहिनी, महिषासुरमर्दिनी, दशभुजाधारिणी दुर्गा की भव्य प्रतिमा है । उसके आगे धूप-दीप जल रहा है और सारा मन्दिर एक अलौकिक सुगम्भ से गमक रहा है ।

देवी की प्रतिमा के आगे एक जटाघूटधारी साझु सारे शरीर में भस्मी रमाये छ्यानावस्थित बैठा है ।

गर्भगृह के बीचों-बीच लटकती घण्टे की जंजीर के सहारे जब हम दोनों बारी-बारी से घरा धाम पर अवतीर्ण होते हैं, तो साझु का छ्यान भंग होता है ।

आंखें खोलकर साझु हमारी ओर देखता है ।

हम उसकी ओर देखते हैं ।

दोनों ओर आश्चर्य की मात्रा बराबर है ।

कहां, कैसे, कौन—के प्रसन् दोनों ओर बराबर उमड़ रहे हैं ।

तभी अचानक देवी की प्रतिमा के आगे धूप-दीप के साथ रखी दो छोटी-छोटी पेटियों की ओर मेरा छ्यान जाता है ।

एक नया ही प्रसन् पुराने प्रसनों के अस्तरों पर हाथी हो जाता है ।

“इस पेटी में क्या है ?” मैं एक पेटी की ओर इशारा करते हुए पूछता हूँ। साथु सहज भाव से पूछता है —“यह क्यों जानना चाहते हो ?”

अब सु… के बोलने की बारी है। सु… कहता है—“मैं इनको यही बताने के लिए यहां आया हूँ।”

तब साथु ने बिना किसी भ्रमिका के कहा, “इस पेटी में नापाम बम का इंजेक्शन है।”

मैं साथचर्य पूछता हूँ—“नापाम बम का इंजेक्शन ?”

साथु दृढ़तापूर्वक कहता है—“हां।”

तब मैं दूसरी पेटी की ओर सकेत करते हुए पूछता हूँ—“और उस पेटी में क्या है ?”

साथु उसी सहज भाव से कहता है—“इस पेटी में अणुबम की रेडियो-धूलि के विकिरण से बचने का मसाला है।”

नापाम बम का इंजेक्शन ?

अणुबम का एप्टीडोट ?

नापाम बम का इंजेक्शन ?

अणुबम का एप्टीडोट ?

यही दो वाक्य दिमाग में ऊपर-नीचे चक्कर लगाते रहते हैं। मेरी जांचें फटी की फटी रह जाती हैं।

“योही देर के लिए मैं बड़ बन जाता हूँ।

फिर मैं भी कभी साथु की ओर देखता हूँ, कभी देवी की प्रतिमा की ओर, कभी उन पेटियों की ओर, और कभी उस सर्वथा अपरिचित, किन्तु जन्म-जन्मान्तर से परिचित साथी सु… की ओर।

प्रकृतिस्थ होने में योही देर लगती है। फिर जैसे अपने दिमाग में भरे जांकाओं के फिलूर को उगलाकर बिना किसीको लक्ष्य किए, हवा में प्रसन उछालता हूँ—“यह देवी का मन्दिर है या कोई वैज्ञानिक प्रबोधशाला ?”

प्रसन में छिपे आरोप से भी साथु के मुख पर कोई उत्सेजना की लहर नहीं आती। वहां जैसे व्यक्तिगत शान्ति का साम्राज्य विद्यमान है। निर्वात-निष्कम्प दीपशिखा-सी उसकी जांचें। अतल समुद्र में खड़े अविचल प्रकाश-स्तम्भ-सा उसका मस्तक। टेलीविजन के एंटीना-सा उसका जटाजूट।

टेलीविजन के एंटीना में हल्का-सा कंपन आता है और साथु साल्ड-मंभीर धोष के साथ आकाशवाणी-सी करते हुए कहता है—“पाकिस्तान को तोड़ने की हमारी योजना है।”

शायद आप कहेंगे कि मैंने कोई भनवड़न जासूसी कहानी आपको सुना दी है।

नहीं, यह जासूसी कहानी बिलकुल नहीं है। वह है एक स्वप्न जो आश्विन मास की एक निष्प्रवृत्त निशा में मेरे मन के फलक पर अकस्मात् नाजिल हुआ था।

सबेरे जब सौकर उठा, तब इस स्वप्न की सारी बातें ज्यों की त्यों दिमाग में साफ थीं।

हो सकता है, आप इस स्वप्न की बात पर चिश्वास न करें। मैं भी इस स्वप्न के फलितार्थ के बारे में पहले चिश्वास नहीं करता था।

बंगला देश के उदय के साथ पाकिस्तान का विषट्टन सत्य सिद्ध हो जाने पर किसीको भी इस स्वप्न में चमत्कार जैसी कोई बात नहीं दिखेगी।

पर जित समय मुझे यह स्वप्न आया था, तब तक राजनीतिक क्षेत्र में तो क्या, औपन्यासिक स्तर पर भी कहीं पाकिस्तान के विषट्टन की कोई चर्चा नहीं थी।

कहा जाता है कि सबसे पहले ढाका विश्वविद्यालय के समाजविज्ञान विभाग की अध्यक्षा कुमारी रौलक जहाँ ने सन् १९७० के प्रारम्भ में इस बात की घोषणा की थी कि अब पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान के साथ किसी भी हालत में नहीं रह सकता। जिस पुस्तक में उसने यह बात लिखी थी, उस पुस्तक का नाम या ‘पाकिस्तानः ए केल्वोर इन नेशनल इंटिप्रेशन’ और वह सन् १९७२ में केलिफोनिया (अमेरिका) से प्रकाशित हुई थी।

पर मुझे यह स्वप्न उससे भी दो बर्ष पहले आया था।

हो सकता है, सन्त-महात्माओं को स्वप्न में महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं की पूर्व-सूचना मिल जाती हो। पर मैं तो सन्त-महात्माओं की चरणरत होने के बोध भी नहीं। किर भी मुझे कई बार स्वप्नों में महत्वपूर्ण घटनाओं के संकेत मिले हैं।

सबेरे मैंने अपनी पत्नी को जब यह स्वप्न सुनाया तो उसने छूटते ही

कहा—“तुम तो सदा इसी तरह की बेसिरपैर की बातें सोचते रहते हो, इसलिए तुम्हें स्वप्न भी बेसिरपैर के ही आते हैं।”

सभी भलेमानस भेरे उस स्वप्न को बेसिरपैर का ही बताएगे।

पर मुझे चैन नहीं पड़ रहा था। मुझे लग रहा था कि यह कोरा स्वप्न नहीं है, बल्कि भावी घटनाओं का सूचक है।

तब मैंने अपनी डायरी में यह स्वप्न अंकित कर लिया।

वह डायरी आज भी भेरे पास मौजूद है। डायरी में स्वप्न को अंकित करने की तारीख पढ़ी है— १५ अक्टूबर, १९६८।

१५ अक्टूबर, १९६८ के बाद से ही मन में यह भुन थी कि बंगला देश में जाकर उस स्थान की तलाश कर्ह जिस स्थान का स्वप्न में निर्देश था। वह स्थान अवश्य चटगाँव के आस-पास ही होना चाहिए। क्योंकि स्वप्न के उस अपरिचित सुष्परिचित सु...ने मुझे चटगाँव ही चुनाया था।

पर यह स्थान चटगाँव के पास ही हो, यह एकदम ज़रूरी भी नहीं है। बंगला देश में किसी भी स्थान पर हो सकता है। अंग्रेजी में कहावत है, “नो सिमिली स्टैण्ड्स ऑन फोर लैम्स”—वैसे ही स्वप्न की भी सारी बातें अक्षरणः सत्य हों, यह समझना स्वप्न-विज्ञान के प्रति अन्याय होगा। फिर भी उस स्थान से मिलता - जुलता कोई स्थान बंगला देश में अवश्य होना चाहिए — यह विश्वास मन में बैठा हुआ था।

वैसे सन्तान के बड़ा होने में समय लगता है, वैसे ही संकल्प - शिशु के वयस्क होने में भी टाइम लगता है। सालों-साल कोई संकल्प बन के किसी कोने में दुबका पड़ा रहता है, पर वह परवान तभी चढ़ता है, जब उसका उचित समय आता है।

वह उचित समय कब आता है, यह कदाचित् अपने हाथ की बात नहीं है। पाकिस्तान के टूटने की ही बात ले लीजिए, स्वप्न में सकेत मिला सन् १९६८ में, पर उसके चरितार्थ होने का अवसर आया उसके तीन साल बाद, सन् १९७१ में।

आप कल्पना कर सकते हैं कि सन् १९७१ के मुकितबाहिनी के संघर्ष के दिनों में और भारत के सैन्य-अभियान के दिनों में मेरे मन में कितनी तला-

मत्ती मनी होगी अपने स्वप्न के घटनास्थान को देखने की । पर वह अवसर तब नहीं आया ।

अवसर आया सन् १९७४ में, पूरे सात साल बाद ।

दिसम्बर के महीने में अचानक कलकत्ता जाने का सुधोम बना तो मुझे समझा कि बंगला देश में अपने स्वप्न की तलाश करने का समय अब आ गया ।

मेरी बंगला देश की यात्रा उसी स्वप्न की तलाश है ।

## कलकत्ता से ढाका

दिसम्बर का अन्तिम सप्ताह रीमक का समय होता है—खासकर बड़े शहरों में। एक तो बड़े दिनों की छुट्टियों, फिर राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और साहित्यिक संस्थाओं के वार्षिक सम्मेलन भी उन्हीं दिनों में होते हैं। फिर इस बार टेस्ट मैच का अतिरिक्त आकर्षण भी साथ में जुड़ गया।

इस प्रकार नई-नवेली दुलहिन की-सी साज-सज्जा से अर्जकृत कलकत्ता भ्रान्तिरी भीड़ के लिए अपनी सामाज्य व्याप्ति को और असामान्य बनाकर सन् ७५ के नव वर्ष के आगमन की आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी, कि अक्समात् २६ दिसम्बर के समाचारपत्रों में सबर छपी कि बंगला देश में आपात स्थिति घोषित हो गई है, संविधान में प्रदत्त अनुत्तमता के मूलभूत अधिकार स्थगित कर दिए गए हैं और सब मुख्य स्थानों को सेना ने अपने नियंत्रण में ले लिया है।

बंगला देश में पता भी हिले तो उसकी प्रतिक्रिया कलकत्ता में हुए बिना नहीं रहती। ढाका से जो पत्रकार बड़े दिनों की छुट्टियों की भौमि में किकेट का टेस्ट मैच देखने कलकत्ता आए हुए थे, वे सब मैच बीच में छोड़कर ३० दिसम्बर को ही कलकत्ता से बापर ढाका उड़ गए। पता नहीं आगे क्या होने वाला है, ऐसे समय हमें बंगला देश की राजधानी में ही रहना चाहिए—कर्तव्य की यही पुकार उनके मन में थी।

तभी मैंने भी बंगला देश जाने का इरादा पक्का कर लिया।

पासपोर्ट और बीसा की व्यवस्था दिल्ली से ही करके चला था।

कलकत्ता से स्वल मार्ग द्वारा ही बंगला देश जाना चाहता था। किसी देश को पूरी तरह देखना-समझना हो तो उसमें विमान-बाला सहायक नहीं होती। जो लोग कबही में पाला छूने की-सी हरकत को ही बाला समझते

है, विमान-सेवा उन्हींके लिए है।

पर साथी पत्रकारों ने कहा कि किसी गैर बंगलाभाषी के लिए इस समय स्थल मार्ग से बंगला देश जाना अपने लिए लतरा मोल लेना है—इतनी अरागकता है, तभी तो आपातकालीन स्थिति घोषित की गई है।

मैं अपने इरादे से डिग्नें को लैंगार नहीं हुआ। तब साधियों ने मिक्रो-पूर्ण रात्राह दी कि बदि जाना ही है तो वायुमार्ग से जाओ, कम से कम ढाका तो सुरक्षित पहुंच सकोगे।

पता लगा कि कलकत्ता से ढाका के लिए दिन-भर में केवल एक ही उड़ान है—प्रातः साढ़े आठ बजे। आपातस्थिति के कारण कलकत्ता से ढाका जीटने वाले यात्रियों की संख्या भी बहु गई थी इसलिए टिकट मिलना आसान नहीं था।

३० विसम्बर को बौद्धूप करके विमान का टिकट लिया और ३१ ता० को सवेरे साढ़े सात बजे मैं दमदम हवाई अड्डे पर पहुंच गया।

बंगला विमान सेवा का अड्डा थोड़ा हटकर है जहाँ जाने के लिए वाहन या सामान के लिए कुली भी सहज मुलभ नहीं होता।

ठीक ह बजे केरेवत विमान उड़ा और ५० मिनट में लगभग २०० भील का सफर तय करके दस बजते न बजते उसने ढाका के हवाई अड्डे पर पहुंचा दिया।

सवेरे दमदम पहुंचते समय ठंडी हवा का सामना करना पड़ा था, ढाका के हवाई अड्डे पर उतरते ही खूले आकाश और सुनहरी धूप ने उसकी भरपाई कर दी।

मार्ग में विमान में ही एक सहयात्री ने पता लगा कि बंगला देश में भारतीय मुद्रा के २० रुपये से अधिक लेकर नहीं जा सकते। इससे चिन्ता पैदा हुई।

परन्तु हवाई अड्डे पर तलाशी नहीं हुई। इतना जरूर पूछा गया कि ढाका में कहा ठहरेंगे और सर्व का क्या इन्तजाम होगा। ढाका में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का उपकार्बिलिय होने से इसका उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं थी।

ढाका के हवाई अड्डे से बाहर निकलते ही भिक्षारियों ने बेर लिया।

मुझे ही नहीं, सभी यात्रियों को। छोटे-छोटे बच्चे, सर्दी के गौसम में भी बसते हीन। पेट पीठ से लगे हुए। दबनीय सूरतें।

अहा ! नवागन्तुक का यह कैसा स्वाच्छत है !

और मुझे याद आता है हवाई जहाज में यात्रियों को दिया गया नाश्ता —सुन्दर, स्वादिष्ट और पर्याप्त। साथ में चाय या काफी—जो आपको पसंद हो।

इन भिखारियों को देखकर मन ही मन मुझे लज्जा वा रही है—क्या किसी तरह यह नहीं हो सकता या कि अपने पेट में अनावश्यक रूप से ठुसने के बजाय मैं वही नाश्ता इन भिखारियों में से किसी एक को दे देता ।

हवाई जहु से शहर तक की सड़क बच्छी लगी। साफ-सुधरी और चौटी। ढाका की प्रायः सभी मुख्य सड़कें इसी कोटि में आती हैं। सड़कों के बीच की हरी पट्टी भी सुन्दर है।

शहर में भुसते ही जिस बात ने मुझे प्रथम दण्ड में ही आकर्षित किया, वह थी—अधिकांश दुकानों, देंकों, और होटलों के नामपट्ट बंगला भाषा में। बंगेजी कहीं-कहीं केवल अपवादस्वरूप ।

दोषहर को भारतीय दूतावास गया। पत्रकार के नाते वहाँ मुझे प्रथम परामर्श यह मिला : (१) अकेले कहीं मत जाओ, बंगलाभाषी न होने के कारण अकेले जाने पर परेशानी हो सकती है। खासकर रात में कहीं अकेले मत निकलो। (२) आन्तरिक बंचलों में मत जाओ। (३) अपने भारतीय होने की बात को अनावश्यक रूप से मत उछालते फिरो। (४) अपनी आंख और कान सुले रखो, पर नुह नहीं। (५) यदि कहीं कोई अवाञ्छनीय घटना घटित हो तो हमें तुरन्त सूचित करो ।

पूर्ण सदाशयता से दिए गए इन सुझावों के भाष्य की बावश्यकता नहीं। मैं चौंका भी। पर इससे स्थिति की चिष्ठमता का अन्दाज लग गया। मैं सुझाव सचमुच ही बहुत काम आए ।

कलकत्ता की भीड़ देखकर याद आ—जहाँ 'ट्रैफिक जाम' हर रोक की बात है। पर सदियों की दोषहर में भी ढाका के मुख्य बाजारों में, जहाँ बड़े-बड़े स्टोरों का प्रायः जभाव है और दैनिक बावश्यकता की छोटी-छोटी दुकानों का बाहूत्य है, मुझे भीड़ का जमाव जसरा। 'ट्रैफिक जाम' की तो

बात ही नहीं ।

जलवत्ता 'चुलिस्तान' के मुख्य बाजार में शाम को चौराहे पर दफ्तरों और दुकानों से छुट्टी करके चारों ओर से आने वाले लोगों की भीड़ कुछ अच्छी नगी । यों 'इस्टरकॉटिनेंटल' और 'पुरवाणी' जैसे होटलों की तथा 'सोनाली' और 'नेशनल बैंक बाफ बंगला देश' जैसे बैंकों की इमारतों भव्य लगीं । पर शहर का व्यक्तित्व तो इमारतों से नहीं, जादमियों की भीड़ से ही बनता है ।

और हाँ, सोनाली बैंक की भव्य और आधुनिक इमारत के द्वार के नजदीक ही सड़क पर चटाई ओढ़े, दो मुद्री चावल के लिए तरसते, बस्तिकंकाल, भिस्कारियों ने भी आँखों के सामने अभीरी और गरीबी का 'कण्ट्रास्ट' उपलिख्यत करके चित्र को एकरुप होने से बचा लिया ।

बंगला देश में छड़ी बाधा छंटा आगे रहती है । फिर भी सूर्योत्तर ताज़े ५ बजे ही हो गया और साढ़े पांच बजे तक तो अच्छी तरह रात का जालम छा गया ।

अगले दिन एक जनवरी थी—नववर्ष का पहला दिन । मुझे बंगला देश की राजधानी में कोई विशेष चहल-पहल नज़र नहीं आई । और पूर्व-संध्या को बिल्ली जैसा ही-हुल्लहू तो बिल्कुल नहीं । क्या वह सब पेट-भरों के चौंचले हैं । या 'इमर्जेंसी' ने ढीला कर दिया है । जलवत्ता कलकत्ता टेस्ट में भारत विजय के समाचार से कुछ बगों के चेहरे पर चमक जल्लर नज़र आई । ढाका में मैंने वह रमण रेस कोसं मैदान देखा जहाँ पकिस्तान के बहतर हज़ार सैनिकों ने जनरल नियाजी के नेतृत्व में जनरल अरोड़ा के समक्ष आत्मसमर्पण किया था ।

बिल्ली के रामलीला मैदान से कहीं बढ़ा है यह मैदान । १० जनवरी, १९७२ को बंगवन्धु सेख मुजीब का स्वागत इसी मैदान में हुआ था, जब वे पाकिस्तान के मृत्यु कारणार से छूटकर आए थे । बंगवन्धु ने अपने राजनीति-गुरु श्री हसन शहीद सुहरावर्दी की समृति को चिरस्थायी बनाने के लिए अब इस मैदान का नाम 'सुहरावर्दी उद्यान' रख दिया है ।

इसी मैदान की बगल में एक गुरुद्वारा था, जिसे पाकिस्तानी सेना ने तहस-नहस कर दिया था । भारत के विजयी सेनापति जनरल अरोड़ा की

पहल से अब उसका जीर्णोद्धार हो चुका है और वहां एक अन्यी भी रहता है।

परन्तु रेसकोर्स भैदान के अन्दर ही कई सौ साल पुराना काली का एक बड़ा मन्दिर था जिसे पाकिस्तानी सेना ने नेस्तनाबूद करके और वहां ट्रॉक्टर चलाकर बिलकुल समतल कर दिया था। उसके जीर्णोद्धार की अचार्ही भी कहीं सुनाई नहीं दी। काली का यह मन्दिर कभी ज्ञानितकारियों का विशिष्ट पूजा-स्थान था और वे इसी मन्दिर में कान्ति की दीक्षा लिया करते थे।

दाकेश्वरी का मन्दिर देखा जिसके नाम से 'दाका' नाम पड़ा। इस मन्दिर को एक हजार साल पुराना बताया जाता है। वहां शिवरात्रि के दिन मेला लगता है। जनता के मन-मन्दिर में जसी इस मन्दिर की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर ही पाकिस्तानी सेना ने इसे नहीं छुआ और वह उन प्रशंसकारी दिनों में भी सुरक्षित रहा। नेपाल-नरेश ने परिवार सहित इस मन्दिर के दर्जनों को अपनी इच्छा से याहिया लां को अवगत कर दिया था। इस कारण भी पाक सैनिक इस मन्दिर से दूर रहे।

म्यूजियम देखा। बंगला देश वाले म्यूजियम को 'जादूघर' लिखते-बोलते हैं। पहले 'जादूघर' शब्द से चौंका। जब पता चला कि यह म्यूजियम है, तब उसको देखना आवश्यक हो गया।

बंगला देश के विभिन्न स्थानों पर खुदाई में प्राप्त सरस्वती, सूर्य, लल्ही, विष्णु और बुद्ध की कलापूर्ण मूर्तियाँ वहां प्रचुर संख्या में विद्यमान हैं। संस्कृत, अरवी, फारसी के शिलालेख भी अच्छी संख्या में हैं। संस्कृत का एक शिलालेख बादशाह सिराजुद्दीन द्वारा तैयार कराया गया है, जो इस बात की निशानी है कि मुत्तलमान बादशाह भी संस्कृत को प्रशंसनी में पीछे नहीं थे। मुलतान जलालुद्दीन संस्कृत का प्रशंसक था और उसने अपने दरबार में बृहस्पति नाम के एक पण्डित को रखा था और उसे 'रायमुकुट' का शिताव दिया था। दीनाजपुर में प्राप्त मुलतान महमूदशाह का एक संस्कृत शिलालेख भी म्यूजियम में भौवूद है जिसमें उसके द्वारा पुन बनाए जाने का उल्लेख है।

जब संस्कृत की बात आ ही गई, तो वहां यह कहूँ देना भी अप्रासंगिक

वहीं होता कि औरंगजेब से पहले जितने मुसलमान बादशाह हुए, उन्होंने प्रथमः संस्कृत भाषा को और संस्कृत के पण्डितों को प्रश्नय दिया है। बंगभूमि में ही नहीं, वहाँ से बहुत दूर कश्मीर में भी, यही प्रवृत्ति रही है। कश्मीर के शासक जैनुलजाबदीन ने संस्कृत के अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों का फारसी अनुवाद कराया था और उससे पूर्ववर्ती शासक के समय जो पण्डित कश्मीर छोड़कर भाग गए थे, उन सबको उसने बापस बुलाया था। उसने 'राजतरंगिणी' के लेखक प्रसिद्ध कवि कलहण ते रचयं 'योगवासिन्द्ध' मुला था। कश्मीर के कुछ मुस्लिम शासकों ने अपने शासनकाल में संस्कृत को राजभाषा भी बनाया था। कश्मीर के अनेक मकानों पर बाज भी संस्कृत के शिलालेख लगे हैं।

औरंगजेब के पिता शाहजहां का और सगे भाई दाराशिकोह का संस्कृत-प्रेम तो प्रसिद्ध ही है। शाहजहां ने अपने दरवार में कबीनद्राचार्य, पण्डितराज जगन्नाथ, नित्यानन्द, बेदांग राय, और परशुराम मिश्र जैसे विद्वानों को सादर प्रश्नय दिया था। शाहजहां ने बाराणसी तथा प्रबालराज जैसे धार्मिक तीर्थों में यात्री-कर भी समाप्त कर दिया था। दाराशिकोह ने उपनिषदों और वेदान्त दर्शन का फारसी में अनुवाद किया था।

गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन और हिन्दी साहित्य में रहीम के नाम से प्रसिद्ध अन्युरंहीम खानखाना ने 'खेट कौतुकम्' नामक एक ज्योतिष-सम्बन्धी ग्रन्थ और 'मधनाष्टकम्' नामक काव्यग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे थे।

बंगाल के सप्तग्राम-विजेता दरामद्दीन ने संस्कृत में 'गंगा-स्तुतिः' लिखी थी। बंगाल के नवाब शाइस्तालालों के भी संस्कृत में रचित कुछ पद 'रासकल्पद्रुमः' नामक ग्रन्थ में उपलब्ध हैं।

इसी शाइस्तालालों का एक बंशज आज भी ढाका में विद्यमान है और बंगला देश की सरकार के किसी विभाग में उपराजी का काम करता है। ढाका के मुखलकालीन किले को वह अपनी पुश्टीनी जायबाद में शामिल करता है और उसे हस्तगत करने के लिए उसने अदालत में दावा भी कर रखा है। कभी उसीके पूर्वांगों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को यह किला १५ रु० मासिक के हिसाब से किराये पर दिया था। इस सम्बन्ध के कागजात उसके पास जमी तक भीजूद हैं। पर कमाना इतना बदल गया है कि उसकी कहीं

सुनबाही की संभावना नहीं है।

बात तो म्बूजियम की चल रही थी।

इसी म्बूजियम के हथियारों वाले कक्ष में राणा कुम्भा और टीपु सुलतान की तलवारें हैं। नादिरशाह के जमाने की पिस्तौलें हैं जो आकार-प्रकार में आधुनिक आटोमैटिक गन से मिलती-युलती हैं।

एक कक्ष में बंगला देश के मुकित-संशाम का परिचयात्मक सचित्र इतिहास है—जो २५ मार्च, १९७० से जुरु होता है, जिस दिन बंगलबुद्धि शेख मुजीबुर्रहमान ने रमण रेसकोर्स मैदान में पहली बार बंगला देश की स्वतंत्रता के लिए और पाकिस्तान के पंजे से मुकित के लिए जनता का आहवान किया था, और उस दिन समाप्त होता है जिस दिन जनरल नियाजी के नेतृत्व में पाकिस्तानी सेना ने भारतीय सेना के समक्ष आत्मसमर्पण किया था।

यहीं बंगला भाषा में लिखी कुरान और अरबी लिपि में लिखे गए बंगला भाषा के कई ग्रन्थ देखने को मिले। यहीं देखने को मिले रवि वाला, शरत-चन्द्र चट्टोपाध्याय और जगदीशचन्द्र बसु जैसे बंगभूमि के सपूतों के उन्हीं-की हस्तलिपि में लिखे वे अमूल्य मूलपत्र जिनका मूल्य रपवे-पैसों में नहीं बोका जा सकता।

इसके बाद देखा बाल्दा हाउस नामक एक अनुपम बाव जिसे नरेन्द्रनाथ राय नामक एक जमीदार ने केवल व्यनितगत शौक के आधार पर बनाया था। जिस तरह हैदराबाद का सालारजंग म्बूजियम एक व्यक्ति के ही शौक, अम और धन का परिणाम है, उसी तरह तीन एकड़ में फैला यह बाल्दा हाउस उद्घाटन भी। उस व्यक्ति ने देश-विदेश से किस प्रकार के पेड़-पौधे और फूल इकट्ठे करके यह नायाब बाटिका तैयार की होगी, यह जिनका अपनी आंखों से देखे कल्पना नहीं हो सकती।

श्री राय को न केवल बनस्पति-विज्ञान का शौक था, दर्शन, कला, साहित्य और अध्यात्म में भी उत्कृष्ट अगाध रुचि थी। वे अनेक भाषाओं के पण्डित थे।

इस बाग के दो खण्ड हैं। दोनों के अलग-अलग द्वार हैं जिनके नाम यूनानी भाषा में हैं। एक द्वार का नाम है 'सिविलि' (यूनानी भाषुदेवता) और दूसरे द्वार का नाम है 'साइकि' (जिसका शीक भाषा में अर्थ है—

बात्मा ) ।

श्री राय को नाट्यकला का भी शौक था । उन्होंने उद्यान में ही एक प्रेक्षागृह का निर्माण कराया था जिसमें प्रतिदिन एक नाटक अवश्य होता था, जिसे देखने के लिए उनके पारिवारिक जनों के अलावा ढाका नगर के अन्य कला-रसिक व्यक्ति भी प्रतिदिन उपस्थित होते थे ।

इस कला-रसिक व्यक्ति ने अपने निवास के लिए भी कवि-जनोचित अवस्था की थी । उद्यान में ही एक मनोहारी पुष्करिणी बनाई, जिसकी सीढ़ियों पर संगमरमर की रंग-बिरंगी टाइलें लगी हैं और जल-विहार के लिए कश्मीरी शिकारानुमा एक छोटी-सी नौका भी उसमें पड़ी है । उसी पुष्करिणी के तट पर एक दुमंजिला हवाबार, छोटा-सा बंगला, जिसका कुछ हिस्सा पानी के अन्दर और कुछ जमीन पर और दोनों भागों को जोड़ने के लिए एक छोटी-सी पुलिया । किसी चाहनी रात में इस पुष्करिणी में नौका में जल-विहार का रथ कितना रोमांचक होगा ।

मन को लगा कि इस स्थान पर तो कवि-कुल-गृह कालिदास या कवीन्द्र रघुनंद का निवास होता तो सोने में सुगन्ध होती ।

तभी पता लगा कि रवि बाबू श्री राय के अतिथि बनकर कुछ काल तक इसी बंगले में रहे थे ।

इस उद्यान में स्वर्ण अशोक, रक्तपुष्पी, लेडी एमहस्टं टो, इतायची, कपूर, दालचीनी आदि के अनेकानेक वृक्षों के अलावा एक 'पागला' नामक वृक्ष है जिसका प्रत्येक पता दूसरे पत्ते से भिन्न है । श्री राय ने घोषणा कर रखी थी कि कोई भी व्यक्ति इस वृक्ष के कोई-से दो पत्ते अगर एक जैसे दिखा देगा तो उसे पुरस्कार दिया जाएगा ।

श्री राय ने अपनी मूल्य से पहले ही अपना समाधि-लेख तैयार करवा लिया था और उसपर संस्कृत के ये दो वाक्य मूढ़वाए थे । 'सत्यात् परो धर्मोनास्ति' और 'ज्ञानान्मुक्तिः'—सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और ज्ञान से मुक्ति होती है । इन दो वाक्यों में ही उनका सारा जीवन-दर्शन आ जाता है ।

जब से उद्यान सरकार के नियंत्रण में चला गया है तब से इसने भी मुक्ति का सुख कैसा होता है, इसका आस्वाद पा लिया है । अधिकांश वृक्ष वृक्ष

बायब हो गए हैं। वे सम्बद्ध अफसरों की गृह-वाटिकाओं की शोभा बढ़ा रहे हैं। जिस बाग में दर्शनार्थियों की पहले भीड़ लगी रहती थी, अब उसका दर्शनार्थी मुझे अपने सिवाय और कोई विलाई नहीं दिया।

ढाका विश्वविद्यालय देखा—जिसकी न केवल शिक्षा के क्षेत्र में, बल्कि मुक्ति-संसाधन में भी, महत्वपूर्ण भूमिका रखी है।

ढाका का हाइकोर्ट देखा जिसकी शानदार इमारत पूर्वी पाकिस्तान के गवर्नर आजमखां की बेहतरीन यादगार है।

सचिवालय देखा—जिसकी इमारत भव्य है, पर काम-काज की चहल-पहल कहीं नहीं दीखी।

बैठुल मुकरंम मस्जिद देखी जो दिल्ली की जामा मस्जिद से कहीं बड़ी है और जिसका एशिया-भर में विशिष्ट स्थान है। इसी मस्जिद की छत की भीनार पर एक हवाई जहाज बना हुआ है जिसके काकपिंड में बैठकर भौलवी सवेरे-सवेरे बजान लगाता है और अबनि-विस्तारक घन्तों की छुपा से उसकी बाँध दूर-दूर तक सुनाई देती है।

ढाका की बगल में ही बहती है गंगा, जो वहां पदमा या बूढ़ी गंगा कहलाती है। उसके तट पर बना है ढाका के नवाब का महल जिसके द्वार और खिड़कियां गंगा की ओर खुलते हैं। इस मनोरम तट पर ठाकुरबाड़ी जैसी आलीशान इमारतों की उपस्थिति इस बात की सूचक है कि पहले कभी ढाका के रईस इधर ही रहा करते होंगे। यह तटीय नूभाग पहले कभी प्रातःकालीन ऋणमार्यियों की अच्छी सेंरगाह थी, पर अब नया बाजार और लान्चघाट के भीड़-भड़के तथा गंदगी की भरमार की बजह से उधर कोई घूमने नहीं जाता।

सक्षारी पट्टी नामक हिन्दुओं का घना आवाद मुहल्ला देखा जो पुरानी दिल्ली के गली-कूचों जैसा है और जिसके बहुत-से जले-जधग्जे मकान अब भी पाकिस्तानी सेना की नूबांसता की कथा कहते हैं।

ढाका का बह प्रसिद्ध जौहरी बाजार देखा जो अपनी शान-शौकत और साज-सज्जा में दिल्ली के दरीबे के जौहरियों के कान काटता है और जिसे लूट-मार की अन्धस्त पाक सेना का सबसे अधिक कोप-भाजन बनना पड़ा था। अब स्वतंत्र बंगला देश के उदय के पश्चात् इस बाजार की रौनक कुछ लौट आई

है, पर अपनी समृद्धि के लिए विस्तार यह बाजार कभी अपने पूर्व चैम्पव को प्राप्त कर सकेगा, इसमें सन्देह है।

और बहुत कुछ बेजा।

इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यवस्थाओं, पेशों और विभिन्न वर्गों के लोगों से मिलना-युलना तथा भैंट-मुलाकात भी चलती रही।

और जब ढाका से मन भर गया तो मैं चटगांव के लिए चल दिया।

## चटगांव :

### जो कमी क्रान्तिकारियों का केन्द्र था

चटगांव जाने के लिए भी नेक सलाह यही थी कि हवाई जहाज से जाना अधिक सुविधावानक और सुरक्षित है।

यह बंगला देश की उपलब्धि ही कही जाएगी कि वहाँ के अधिकांश बड़े नगर विमान-सेवा से जुड़े हैं। पिछले तीन सालों में लखपतियों का जो नवा वर्ग वहाँ पैदा हो गया है उसे विमान-सेवा ही अधिक रास आती है। पर भरती के बेटों से मिलना हो तो हवा में उड़ने से क्या काम।

मैंने चटगांव जाने के लिए सबेरे ६ बजे की पहली बस पकड़ी।

यों सारा बंगला देश नदियों की झीलास्थली है, पर ढाका तो अस्तरा: चारों विशाओं से नदियों से घिरा है। ढाका से निकलकर कहीं भी बाहर जाना हो तो फेरी की जारण अनिवार्य है।

आए दिन फेरी उलटने की घटनाएं वहाँ के जन-जीवन में सबसनी पैदा नहीं करतीं, जैसे ब्रह्मात के दिनों में बाढ़ की विभीषिका से वहाँ किसीको जाश्चर्य नहीं होता। और फेरियों के इस चक्कर में समय की पाबन्दी की किसीको शिकायत नहीं करनी चाहिए। एक फेरी निकल जाए तो बगली फेरी की प्रतीक्षा में बंटे-भर से लेकर दो घण्टे तक का समय निकल जाना सामान्य बात है।

मुश्किल से बस १०-१५ मील चली होगी कि सूर्योदय होते न होते मेघना नदी के तट पर पहुंच गए। बसों की लाइन लग गई। जब नम्बर आया तो हमारी बस भी सजारीर फेरी पर लद गई। नदी के विस्तृत पाठ तक फैली निश्चल जलराशि पर सूर्योदय के दस्त को देखते हुए मैं कविता के मूढ़ में था कि साथ की सीट पर बैठे सहयाती ने पूछा—“तैरना आता है?”

मैं चौका "हां, बाता तो है, पर तुम वह क्यों पूछ रहे हो ?"

उसने कहा—"कोई खास बात नहीं, पर फेरी से नदी पार करते हुए कभी उसकी ज़रूरत पड़ सकती है। वैसे कोई खातरे की बात नहीं, पर अचानक……"

मैं उसके मुँह की ओर देखने लगा।

सफुल नदी पार करने पर जैसे राहत मिली।

बगर बस के आगे बढ़ने से पहले कन्धे पर बाटोमैटिक गन लटकाए दो सैनिकों ने बस के अन्दर घुसकर सब यात्रियों के सामान का बारीकी से निरीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया।

मैंने सहयोगी से पूछा—"ये किस चीज की तलाश में हैं ?"

उसने धीरे से कहा—"यह इमर्जेन्सी है। जब कोई व्यक्ति एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में चावल लेकर नहीं जा सकता। तुम्हें मालूम नहीं, आजकल सूले बाजार में चावल का क्या भाव है ?"

फिर स्वयं ही मेरे कान के पास मुँह लगाकर फुसफुसाया—"तीन सौ रुपये मन !"

"तीन सौ रुपये मन या तीन सौ रुपये विवटल ?" मैंने पूछा।

उसने मुँह पर हाथ रखकर इशारा किया कि मुझे सैनिकों की उपस्थिति में चुप रहना चाहिए।

मैं देख रहा था कि मेरे इस सवाल-जवाब से अन्य यात्रियों का भी ध्यान मेरी ओर चला गया था और वे मुझे 'विजातीय द्रव्य' समझ रहे थे। इसलिए मैंने भी चुप रहना ही अप्रस्कर समझा।

इस प्रकार तीन बार फेरी से नदी पार करनी पड़ी और बार-बार सैनिकों द्वारा निगरानी का सामना करना पड़ा।

फिर बस सरपट भाग चली। पर उसमें भी गति का आनन्द नहीं, क्यों कि सड़क की हालत ऐसी थी कि अन्दर बैठे यात्री को झटके पर झटके जैन से नहीं बैठने देते थे।

जदों-जदों बस्तियां चुड़ाती गईं, बस के अन्दर भीड़ बढ़ती गई। जितने यात्री सीटों पर बैठे, उससे अधिक बिना सीटों के लड़े।

रास्ते में एक स्थान पर बस से नीचे उतरा तो देखाकि बस की छत पर भी लोग असामान्य रूप से लड़े हुए हैं। कुछ व्यक्ति बगने सिर पर अपना

सामान लावे हुए पीछे भी जटके हुए हैं। उनके भूजबल के प्रति जनायास भन में प्रशंसा का भाव उदय हुए बिना नहीं रहा। एक हाथ से सिर पर लदे बोझ को संभाले और दूसरे हाथ से बस के पीछे जटके-जटके सारे शरीर को संतुलित रखते हुए मीलों का सफर नवा जाला जी का बर है।

रास्ते में कोमिला आया। जिले का मुख्यालय होने के कारण बाजार बड़ा है, रीनक बाला भी। यहां से ५ मील दूर मैनामाटी है जहां की सुदाई में मिली मूर्तियां और सोने-चांदी के सिक्कों ने उस प्रदेश में सातवीं-आठवीं शती के समृद्ध बौद्ध शासन की स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। इसी मार्ग पर केनी आया जहां से नोआखाली और तिपुरा की सीमा बहुत नज़दीक है। सीताकुण्ड आया जो अपने मन्दिरों के कारण धार्मिक जनों का तीर्थ है।

कभी यह सीताकुण्ड का तीर्थ भी कान्तिकारियों का ऐसा जहा रहा है जिसका सम्बन्ध समस्त भारत के कान्तिकारियों से गुप्त रूप से जुड़ा हुआ था। बाराणसी के कुछ ताषु वहां रहा करते थे। पर बंगला देश की बर्दमान अवस्था ने उनको सीताकुण्ड छोड़ने पर विवश कर दिया।

सड़क के सीमावर्ती गांवों के खेतों में पुस्तनी ढंग से शारीरिक धम में जुटे कृषक परिवारों को देखकर यह जांचने में देर नहीं लगी कि वैज्ञानिक ढंग से खेती का सपना अभी बंगला देश से बहुत दूर है। यों भी खेत बहुत छोटे-छोटे हैं, इसलिए उनमें नये वैज्ञानिक उपकरणों की उतनी गुजाइश भी नहीं।

गांवों में घरों के साथ पोखरों (पुष्करिणी) की अनिवार्यता बंगला देश की अपनी विशेषता है। वन्य हरीतिमा भी अपेक्ष्यात्मक स्थानों पर दर्शनीय है।

चटगांव में ही जन्मे, बंग-साहित्य में नवबुम के पुरोधा, साहित्य के राजाँ, बंकिमचन्द्र ने 'बन्देमातरम्' के राष्ट्रगान में भारतभूमि को जो 'मुजलां मुकलां लास्यलामलाम्' के विशेषण दिए हैं, उनकी सार्वकर्ता स्थान-स्थान पर प्रकट होती थी।

बगभग ढाई बडे चटगांव पहुंचे। तब पता लगा कि कई दिनों के बाद उसी दिन बस ठीक समय पर पहुंची थी। मैंने इसे अपना सौभाग्य समझा।

चटगांव बंगला देश का सबसे बड़ा बन्दरगाह और ढाका के बाद शायद

दूसरे नम्बर का शहर है। प्राचीनिक शोभा प्रतीभनीय है। लीन और हरी-भरी पहाड़ियों और एक और समुद्र। इन्हें ने कभी चटगांव को 'बदीना-तुल-अलजार' (हरी-भरा शहर) कहा था। वह ज्यश्वर्ण नहीं था। चटगांव व्यापार-वाणिज्य का ही नहीं, उपभोक्ता बस्तुओं के उच्चों का भी केन्द्र बनता जा रहा है। यहीं से पार्वत्य-पथ (हिन्दूकट्स) का प्रदेश शुरू होता है जो बर्मा तक चला गया है।

चिष्ठा, मिजोरम, बंगला देश तथा अराकान की पहाड़ियों को अपने बन-पथों से मिलाने वाला यह प्रदेश चिरकाल से कान्तिकारियों और विद्वां-हियों के लिए शरणस्थल रहा है। अपनी मुक्ति के कुछ काल के पश्चात् बंगला देश की सरकार को कबायलियों के एक संगठित विद्रोह का यहां सामना करना पड़ा था और उसके समन के लिए उसे भारतीय सेना की याचना करनी पड़ी थी।

सर्वहारा पार्टी के 'नवसत्तरविद्यों' की लीलास्थली भी यही प्रदेश है।

चटगांव में रहते हुए ही समाचार मिला कि इस पार्टी का युवक नेता सिराज सिकंदर पकड़ा गया और पुलिस के पंजे से बचकर भागने का प्रयत्न करते हुए जोती से मारा गया। 'इमर्जेंसी' के बाद जो सतकंता बरती गई और पकड़-धकड़ शुरू हुई, उसीका यह नतीजा था। पर सिराज के अन्ध-भक्त ऐसे युवक भी मुझे मिले, जो कहते थे कि असली सिराज अभी जिन्दा है।

चटगांव को इसी भीवोलिक परिस्थिति ने ब्रिटिश काल में, जब बर्मा भी भारत का ही हिस्सा था, इस प्रदेश के कान्तिकारियों को समग्र भारत (अब 'उपमहाद्वीप' कहिए, पर बंगला देश के लोग उपमहाद्वीप शब्द का प्रयोग नहीं करते, वे 'महादेश' कहते हैं। 'उपमहाद्वीप' तो हम अंग्रेजों की नकल पर कहने जाएँगे।) का सिरमोर बना दिया था। अरविन्द घोष की 'अनु-शीलन समिति' का नाम था चटगांव। कान्तिकारियों के इतिहास में 'काकोरी यड्यंत्र काण्ड' से कम महत्वपूर्ण नहीं है 'चटगांव शस्त्रागार काण्ड'।

इस काण्ड में 'मास्टर दा' के नाम से विरुद्ध शुरू सेन के नेतृत्व में कान्ति-कारियों के एक दल ने सरकारी शस्त्रागार को लूट लिया था और उस प्रदेश

में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। बाद में जंगेजों ने सबल सैन्य अभियान के द्वारा प्रदेश को पुनः हस्तगत किया था, परन्तु उनेक मुठभेड़ों में उन्हें कान्तिकारियों से हार खानी पड़ी थी। यह घटना सन् १९३० के अप्रैल मास की है।

कान्ति की यह परम्परा वहाँ नई नहीं है। चटगांव में मैंने सन् १९५७ के शहीदों का विशाल स्मारक देखा। सिवाय मेरठ के सारे भारत में और कहीं सन् १९५७ के शहीदों का स्मारक शायद नहीं है। वह परम्परा अभी भिट्ठी नहीं है। इसका प्रमाण है चटगांव की सड़कें। अधिकांश मुख्य सड़कों का नामकरण अब वहाँ मुक्तिकाहिनी के उन शूरजीरों के नाम पर हुआ है जो पाकिस्तानी सेना के साथ संघर्ष में शहीद हो गए।

पाकिस्तानी सेना के अत्याचारों की कहानी के कई अवयोग आज भी वहाँ मौजूद हैं।

जिस चट्टेश्वरी देवी के नाम चट्टग्राम नाम पड़ा, उसी देवी का दो सौ वर्ष पुराना पहाड़ी पर स्थित मन्दिर आज छव्वस्त है। मन्दिर का पुजारी तथा अन्य निवासी कल्प कर दिए गए, मूर्ति तोड़ दी गई, मन्दिर का सब साज- सामान लूट लिया गया। दरवाजे और चिह्नियां भी नहीं बचे।

पाकिस्तानी सेना के अत्याचारों की बानी के लिए 'प्रवर्तक संघ' अभी तक वहाँ मौजूद है। वह जैसे अपनी चिता की राख में से पुनर्जन्म लेकर लड़ा हुआ है।

प्रवर्तक संघ केवल चटगांव के लिए ही नहीं, सारे बंगला देश के लिए गीरव की बस्तु है। उसकी गतिविधियां वहुमुक्ती हैं। विजा जातीय वा ज्ञानिक भेदभाव के उसकी सब प्रवृत्तियां निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं की लगन का फल हैं। वहाँ हाई स्कूल है। छात्र और छात्राओं के अलग-अलग होस्टल हैं। चिकित्सालय है। अनाथालय है। पुस्तकालय है। गृहोदय तिक्काने के लिए हस्तोच्चोग्यालय है। विज्ञान की प्रयोगशाला है। सर्वज्ञम समझाव का शोतक प्रार्थनागृह है। होस्टल में मुसलमान, ईसाई, बाबिनासी और हिन्दू सभी हैं।

और वहुमुक्ती गतिविधियों से समन्वित इस विशाल संस्था की संचालिका हैं दो तरुणियां—कुमारी मीरा सिन्हा और कुमारी जरना

चौधरी—जिन्होंने जनता की सेवा के लिए आजम्ब कौमार्यव्रत धारण किया है। उनके साहस का क्या छिकाना !

इन दोनों तरुणियों को देखकर मुझे बंगभूमि की उस दीर-सुता बहीद प्रीतिलता का स्मरण आए बिना नहीं रहा, जिसने सबह साल की उस कोमल चंद में, जब लड़कियां अपने हाथों में मेहंदी रचाने का स्वप्न देखती हैं और माता-पिता अपनी कन्याओं के हाथ पीले करने को आतुर हो उठते हैं, अनेक अंग्रेजों को अपनी पिस्तील की गोली का निशाना बनाया था और उन्त में अपने शील की रक्षा के लिए पोटारियन साइनाइड स्राकर २४ सितम्बर, १९३२ को देश की बलिदेवी पर शाहीद हो गई थी।

इसी प्रवर्तक संघ में मिल गए मुझे ७३ वर्षीय श्री चारदा जो नोआखाली की पदयात्रा में गांधी जी के साथ थे। जागकल वे नोआखाली के गांधी जाग्रत की देखभाल करते हैं। प्रवर्तक संघ की संचालन समिति में भी है। मुझसे एक दिन पहले ही भारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश श्री कृष्णस्वामी ऐम्पर वहाँ होकर गए थे। चारदा उन्हींकी अगवानी के लिए नोआखाली से बट्टगांव आए थे।

चारदा से मैं प्रसन्न करता जाता और वे पाकिस्तानी सेना द्वारा प्रवर्तक संघ के विष्वंस की कहानी सुनाते जाते।

होस्टल के छात्र-छात्राओं की रक्षा कैसे हुई ? यह पूछने पर उन्होंने बताया कि छात्र तो अधिकांश देहात में अपने किसी रिसेप्शनर या परिचित के यहाँ चले गए, पर छात्राओं को तुरन्त स्थानान्तरित करना संभव नहीं हुआ। उन्हें किशियन पादरी अपने मिशनों में ले गए। लगभग दो सौ छात्राओं को कई महीनों तक उन्होंने अपने मिशनों में रखा। उनके निवास और जान-पान की व्यवस्था की। पर उनकी सुरक्षा के लिए हिन्दू नाम बदलकर सबके किशियन नाम रख दिए गए और उनसे कह दिया गया कि अपना परिचय किशियन नाम से ही देना। अन्तर्राष्ट्रीय रेडकास सौसायटी ने भी इस काम में ईसाई पादरियों की भरपूर सहायता की। इस प्रकार प्रवर्तक संघ की छात्राएं लंकाकाश के उन राशों से बच पाईं।

पर स्वयं प्रवर्तक संघ राक्षसी कोप से नहीं बच पाया।

कुछ दिन तक इसकी इमारतें पाकिस्तानी सेना की बैरकें बगी रहीं।

संघ की रक्षा के लिए जो सोग तैनात थे, वे सब मार डाले गए। मैनेजर की हत्या कर दी गई। उनके निवास बाला एकान्त कमरा अब सदा बन्द रहता है और महीने में एक बार सब सोग एकत्र होकर वहाँ मौन प्रार्थना करते हैं।

संस्था का सब सामान लूट लिया चला। बेज-कुर्सी-दरवाजे-लिफ्ट्सियों सब इंधन के काम आए। पुस्तकालय की पुस्तकों से हमाम का पानी गरम होता रहा। हस्तोदयोवशाला और विज्ञान की प्रयोगशाला इस तरह तहस-नहस कर दी गई कि तीन साल बीतने पर अब तक भी वे चालू नहीं हो सकते।

“बंगला देश की मुक्ति के बाद संस्था का काम कैसे शुरू हुआ?” मैने पूछा।

चारुदा बोले—“जब हम यहाँ लौटकर आए तो स्थान-स्थान पर नरमुण्ड पड़े मिले। एक स्थान पर तो १६ नरमुण्ड इकट्ठे गिने गए।” उनकी ओरें अपने उन कार्यकर्ताओं की समृद्धि में गीली हो गई।

“संस्था को फिर से चलाने के लिए सरकार ने सहायता की होगी?”  
कुछ क्षण रुकार मैने पूछा।

“हाँ की। बंगबन्धु ने पांच हजार का चेक दिया। अपनी संस्था के कार्य की विश्वालता देखते हुए हमने इतनी स्वल्प राशि को सर्वथा अपमान-जनक समझा। इसीलिए लीटा दिया। तब पैंतीस हजार का चेक मिला। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय रेडकास ने क्रिस्तियन मिशन की मार्फत अन्य साब-सामान के अतिरिक्त दो लाख रुपये की सहायता की। तब यह संस्था पुनर्जीवित हो सकी।”

गोदी देखने गया जिसके कारण छटगांव ‘बंग सामर का द्वार’ कहलाता है। बन्दरगाह पर १५ बिशाल नोदाम बने हुए हैं जिनमें जहाजों से उतार-कर सामान रखा जाता है। वो गोदाम अभी तक ब्वस्त हैं जो मुक्ति-संघर्ष के दिनों में भारतीय सेना की अचूक बमबारी की निशानी है। गोदी में लोटे-बड़े कई जहाज खड़े हे जिनमें ७००० टन की कमता बाला भारत का ‘जलमोती’ भी था, जो उसी दिन सरसों, सोयाबीन और मूरखमुखी का तेल तथा अन्य उपचोकता बस्तुएं लेकर आया था।

इन सब चीजों का बंगला देश में अभूतपूर्व संकट है। कभी बंगला देश

'संसार का सबसे सस्ता देश' कहनाता था, पर आज संसार का सबसे महंगा देश कोई है, तो बंगला देश।

'जलमोती' को देखकर इस बात का सबूत तलाज करने की ज़रूरत नहीं रही कि भारत तत्परता से बंगला देश के संकट के निवारण में सहायता कर रहा है।

चटगाँव में बताली हिल, पहाड़तली हिल और फैज़ सील के अलावा वहां का विश्वविद्यालय और इंजीनियरिंग कालेज भी दर्शनीय हैं।

चटगाँव से मैं रंगमाटी, कप्ताई और कोलस बाजार गया। रंगमाटी पार्वत्य पथ छिले का मुख्यालय है। शरत ने 'श्रीकान्त' में जिस रंगमाटी का उल्लेख किया है, वह अलस दोपहरी बाला और शाम को घूमने के लिए दूर तक फैले जाने वेदानों बाला रंगमाटी अब लुप्त हो चुका है। आज का रंगमाटी केवल सड़क के दोनों ओर बसा है, बाकी सारा प्रदेश जलमग्न है।

कप्ताई में जलविश्वात्-बोजना की पूर्ति के लिए कर्णफूली नदी पर बांध बनाकर २६५ मील की कृत्रिम झील तैयार की गई है। रंगमाटी भी उसी-के अन्तर्यात आ गया है। चारों ओर दूर तक नील जल का फैलाव मन मोहता है।

कभी कप्ताई और रंगमाटी का जलमग्न प्रदेश घने जंगलों से घिरा था और उस जंगल में शेर, चौते और हाथी सुलभ थे। पर अब सड़क के दोनों ओर बसी विरल बस्ती को छोड़कर बाकी चारों ओर जल ही जल है।

मिजोरम पञ्चर की तरह बंगला देश में चुसा हुआ है और रंगमाटी से एकदम सटा हुआ है। चर्मा की तीमा यहां से ५-६ मील से अधिक दूर नहीं। अधिकतर आदादी चक्कमा लोगों की है।

भारत के पूर्वी सीमान्त पर पहाड़ियों के ऊर्ध्वभाग पर बसी आदिवासियों की चक्कमा जाति चौढ़ धर्मावलम्बी है। ईसाई पादरियों को जैसी सफलता मिजो और नाचा लोगों को ईसाई बनाने में मिली, वैसी चक्कमा लोगों को लेकर नहीं। चक्कमा चुवक-चुवतियों का रंग खूब सुन्दर और शरीर हृष्ट-पुष्ट है।

रंगमाटी कभी अलग रियासत थी। चक्कमा राजा भुवनचन्द्र भोहन का १८३६ में राज्याभिषेक हुआ था, जिसकी सूचना वहां के छंसावणेषों में

अभी तक सड़े एक शिलालेख से मिलती है। अब उस स्थान पर दो बौद्ध विहार हैं और वहां बौद्ध शिला रखते हैं।

कौनस बाजार चटगांव से ६५ मील दूर है। वहां भी विमान से जाने की व्यवस्था है। बंगला देश की पथप्रदर्शक पुस्तिका में चटगांव से कौनस बाजार तक की सट्टक की जो तारीफ की गई है, वह सब मिल्या है। कोई पर्यटक उसपर विश्वास करेगा, तो धोका आएगा। कभी ईस्ट इंडिया कम्पनी के कप्तान हिरम कौकत ने इसे बताया था। अब वह उसीके नाम पर कौनस बाजार के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कौनस बाजार के समुद्र तट को संसार का सबसे लम्बा रेतीला समुद्र तट बताया गया है। उसकी लम्बाई ७५ मील है। वर्मा की सीमा यहां से भी बहुत निकट है। यहां की आबादी में बर्मियों का अपना स्थान स्थान है। उनकी दुकानें और पशोंडा भी शानदार हैं।

समुद्र तट पर सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। जिस दिन वहां सूर्यास्त की प्रतीक्षा में 'बक्ष पर दुश्वाहू बोचे मैं खड़ा सागर किनारे' का प्रतिरूप बना हुआ था, उस दिन कुछ विदेशी और विदेशियां बारी-बारी से सूर्य-स्नान और समुद्र-स्नान का आनंद लेने के लिए अपने गोरे रंग के पूरे आकर्षण के साथ वहां विराजमान थीं। उस दिन समुद्र तट पर सूर्यास्त के दर्शकों के बजाय विकिनी वेश वाली विदेशियों के दर्शकों की संख्या ही अधिक दिलाई दी।

## बिहारी कहाँ गए

बंगला देश की विमान-सेवा और बस-सेवा के अनुभव के बाद वाकी रह गई थी रेल-सेवा। इसलिए चटगांव से ढाका बापत जाने के लिए रेल की यारण नी।

जन-जीवन के सान्निध्य की खातिर मैं रेल की तीसरी थ्रेणी में ही सफर करना चाहता था। पर तब शायद सफर ही न कर पाता। तृतीय थ्रेणी में आरक्षण की व्यवस्था जो नहीं थी।

प्रथम थ्रेणी के उस छोटे-से डिव्वे में चार शायिकाएँ थीं। चटगांव के स्टेशन पर ही और बाकी भी बपने भारी-भरकम सामान के साथ उस डिव्वे में चुस आए।

गाड़ी चलने के बाद एक सहयात्री ने, जो रामू चौमुहानी के सरकारी चाय बाबान के मैनेजर थे, उन अतिरिक्त यात्रियों से पूछा—“तुम्हारे पास प्रथम थ्रेणी का टिकट है?”

“नहीं।”

“तब भला इसीमें है कि अगले स्टेशन पर तुम इस डिव्वे से उतर जाओ। नहीं तो, इस समय ‘इमर्जेन्सी’ है और फौजी दस्ता बाड़ी के साथ चल रहा है, तुम किसी भी समय मुसीबत में पह रुकते हो।”

उन यात्रियों की समझ में बात आ गई और अगले स्टेशन पर सचमुच ही वे उतर गए, पर अपना सामान उन्होंने वहीं रहने दिया। जाते-जाते कह गए—‘ज़मारे सामान का घ्यान रखिये, हम ढाका पहुंचकर उतार लेंगे।’

उनके उत्तरते ही उस मुसलमान मैनेजर ने द्वार बन्दर से ‘लाक’ कर दिया और बाकी हम तीनों यात्रियों को और लक्ष्य करके कहा—‘अब आराम से सोइए।’

दिन-भर की दौड़-धूप के बाद यका हुआ हूं और अब आराम से सोना ही चाहता हूं। रात के ११ बजे रहे हैं। वर्ष पर चिस्तर खोलकर, रजाई ओढ़कर लेट जाता हूं। रजाई में घुसने पर लगता है, जैसे बच्चे को माँ की शोद मिल गई हो।

यों भी गाड़ी में नींद न आने की शिकायत मुझे नहीं है। बल्कि घर से भी बच्छी नींद आती है। गाड़ी की आवाज लोरी का और उसकी गति झूले का काम करती है।

पर नींद नहीं आ रही है।

मन में कोई चिन्ता नहीं। अन्दर से द्वार अच्छी तरह बन्द होने के कारण कोई खतरा भी नहीं। फिर थकावट होने पर भी नींद क्यों नहीं?

बार-बार करवट बदलकर सोचता हूं—‘शायद यह ‘पोज’ ठीक रहे।’ शबासन भी करता हूं। पर बात नहीं बनती।

उठकर बैठ जाता हूं। बैठने पर भी चैन नहीं।

जैसे कंट की पीठ पर सबारी कर रहा हूं। गाड़ी इतने ओर से हिच-कोले दे रही है कि हर क्षण वर्ष से लुढ़क जाने का अन्देशा है।

रात-भर बैठा भी नहीं जा सकता।

फिर लेट जाता हूं। लुढ़कने से बचने के लिए ऊपर की वर्ष को साधने के लिए जो जंजीर लगी है, उसके हत्थे में अपना हाथ फँसाकर खिड़की की ओर मुँह करके आँखें बन्द कर लेता हूं।

निद्रावेदी ने कब कृपा की, पता नहीं। पर अचानक जब फिर शटका लगा और नींद खुली तो देखा कि घड़ी में ढाई बजे हैं।

अभी तो आधी रात बाकी है।

इच्छा हुई कि एक बार खिड़की खोलकर बाहर का दृश्य देखूं।

यहाँ की आधी रात का चांद कैसा लगता होगा? कैसा होगा यहाँ का आकाश? कैसा होगा यहाँ का तारामण्डल? कैसा होगा यहाँ पौध मास का बातास?

दिल्ली जैसे महानगर में रहते हुए तो इन चीजों की ओर कभी ध्यान ही नहीं जाता।

किसी जंकशन पर गाड़ी लट्टी है। कौन-सा स्टेशन है—बंगला से

अनभिज्ञ होने के कारण नहीं जान पाता। सामने की पटरी पर जो गाढ़ी खड़ी है उसमें बढ़ने वालों की अफरा-तफरी ऊरुर नजर आती है। गुदड़ी ओढ़े, गठरी अपनी बगल में दबाए, पेंडुकी-सी कुछ अबलाएं, एक-एक करके फिल्डों का चक्कर काटती पूम रही हैं। पर उन्हें कहीं जबह नहीं मिलती।

कुछ हिम्मती युवक डिव्वे में जगह न मिलने पर उचककर रेल की छत पर चढ़ जाते हैं। पर रेल की छत भी मुसाफिरों से भरी है—शुरू से आखीर तक। इस सर्दी में रात-भर छत पर बैठकर सफर करने वाले इन मुसाफिरों की हिम्मत को बलिहारी !

पीप मास का बातास खिड़की खोले रखने की अनुमति नहीं देता। शीशा चढ़ा लेता हूँ। अन्दर से शीशे की ओट से देखने पर लगता है कि आधी रात में प्रेतलोक की छायाएं चारों ओर विचर रही हैं।

चारों ओर के बातावरण के प्रति आधुनिक सम्यजनोचित उदासीनता का खोल ओढ़ लेना चाहता हूँ। पर मन के कोने से बाबाज आती है—‘यह तुम्हारे अपने प्रेत की छाया भी तो हो सकती थी !’

ढाका लौटने पर एक परिवर्तन साफ दिखाई दिया। आपात स्थिति की घोषणा के तीन दिन बाद ही सरकार ने उन लोगों को जबीन खाली करने की नेतावनी दी थी जिन्होंने गैरकानूनी ढंग से सरकारी जमीनों पर कब्जा करके अपनी दुकान या सुम्मी-कोंपड़ी डाल ली थी। जब घोषित अवधि बीत बहुई और जेतावनी निष्फल तिद हुई, तब पुलिस ने आकर वे सब गैरकानूनी ढांचे चिरा दिए।

चटगांव जाने से पहले रेल की पटरियों और सड़कों के दोनों ओर के साली स्थानों पर की सुहागिन वस्ती अब बैधव्य की बीरानी और सामोझी से भरी थी।

गत दो दिनों में लगभग साड़े चार सौ ढांचे गिराए गए थे।

मैंने पूछा कि सरकार की इस कार्रवाई के विरुद्ध कहीं कोई शिकायत, आन्दोलन, प्रदर्शन या शोर-शाराबा ? आखिर इतने लोगों की रोज़ी-रोटी और निवास का प्रश्न तो या ही ?

“नहीं, कहीं कुछ नहीं।” इमर्जेंसी के अन्तर्गत जनता के सब मूलभूत अधिकार भी निरस्त हो गए हैं, इसलिए अदालत में जाकर सरकार के

चिरहढ़ 'स्थगन आदेश' प्राप्त करने की भी कोई नहीं सकता, आनंदोलन और प्रदर्शन की तो बात ही क्या ।

सरकार ने अगली चेतावनी दी थी उन नारों के चिरहढ़ जो मुजीब-शासन के विरोध में स्थान-स्थान पर दीवारों पर लिखे हुए थे । मुजीब-विरोधी नारों की बात सुनकर बंगला देश से जाहर के लोगों को आश्चर्य हो सकता है । पर वे नारे मैंने अपनी आंखों से देखे हैं । ऐसे नारों की संख्या बचपि अधिक नहीं थी, पर उनकी मौदूदगी से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

मन में प्रस्तु उठा कि पाकिस्तान के पक्षपाती उन लाखों बिहारियों का क्या हुआ जिन्हें जनता के कोप से बचाने के लिए बंगला देश की मुक्ति के बाद विविरों में रखा गया था । बंगला देश उन्हें रखना नहीं चाहता था, कोई अल्प देश भी इतनी बड़ी संख्या को अपने यहां बचाने को तैयार नहीं था । युद्धविद्यों की बापसी के बाद सबसे बड़ी मानवीय समस्या यही थी ।

पाकिस्तान द्वारा बंगला देश को मान्यता दिए जाने के बाद लाहौर में बंग-घघु के, और ढाका में भट्टो के, भावभीने स्वागत से यह जाशा बंधी थी कि सूदा की बदली करते हुए भी 'पाकिस्तान-पाकिस्तान' का नाम रटने वाले इन नमक-हल्ताल बन्दों को शायद पाकिस्तान सहज स्वीकार कर लें । पर रंग बदलने में गिरणिट के गुरु जुलिफ्कार इतना बड़ा सिरदर्द क्यों मोल लेते ? पहले ही इन्हे सारे सिरदर्द बेचारे की जान जोखों बने हुए हैं । इस-लिए 'जमीं जुम्बद न जुम्बद गुल मुहम्मद' ।

जिन दिनों बंगला देश में था, उन्हीं दिनों अस्थारों में बयान पड़ा कि अब भट्टो साहब यथासंभव बिहारियों को पाकिस्तान आने की अनुमति देकर इस समस्या को गहृवयतापूर्वक सुलझाने को तैयार हैं ।

एकाएक, गुल मुहम्मद में यह जुम्बिश क्यों जा रही ? या तरवेला के भूकंप ने ६,००० लोगों की बलि लेकर जनाव का वैसे ही हृदय-परिवर्तन कर दिया जैसे कलिंग-युद्ध ने हजारों की बलि लेकर वज्रीक का हृदय-परिवर्तन कर दिया था ?

मैं ढाका से लगभग १५ मील दूर स्थित मीरपुर गया, जहां इस्लामाबाद की नकल पर बंगला देश की नई राजधानी बनाई जा रही है । वहीं नंद

शिविरों में विहारियों को रखा गया था ।

मुझे लगता है कि जैसे भारत में ताजमहल, लालकिला, (दिल्ली तथा बागरा) और कामा मस्जिद के लिए शाहजहां को महान निर्माता के रूप में याद किया जाता है, वैसे ही मरठम जनरल अबूबख़ान को पाकिस्तान के इतिहास-लेखक और किसी रूप में चाहे याद करें या न करें पर 'महान निर्माता' होने के उसके यश को नहीं छीन सकते । उसने न केवल लाहौर का कायापलट कर दिया, बल्कि इस्लामाबाद के रूप में राजधानी के लिए ऐसा नवा नगर दिया जिसपर पाकिस्तान बखूबी गर्व कर सकता है ।

सैन्य प्रतिभा के छनी माने जाने वाले जनरल अबूबख़ान में वास्तु-विश्वासद का-सा यह भवन-निर्माण-प्रेम कहां छिपा था ?

अबूबख़ान की नई राजधानी पूर्वी पाकिस्तान को भी देना चाहते थे । नवा सचिवालय और नये संसद-भवन अमरीकी वास्तुविद् ढारा बनाए गए नवशे के अनुरूप बनाने भी चुरू हो गए थे । कुछ अल्टा माडने छंग के बवाटिर भी बने थे । अबूबख़ान की स्वत्ति को जगाने वाली कुछ भव्य इमारतें जास ढाका में भी बनी हैं । पर पूर्वी पाकिस्तान में उनकी अमर यादगार तो यह नई राजधानी बनती, जिसका भविष्य भी पूर्वी पाकिस्तान का नाम मिटते ही, अब अधर में लटक गया है । अब न सीमेंट है, न अन्य इमारती सामान है, न पैसा है, न नवा शाहजहां है ।

पर मीरपुर पहुंचकर विहारियों वाले शिविर खाली मिले ।

कहां गए इतने सारे लोग ?

विभिन्न सूखों से एक ही उत्तर मिला । मुकित-संघर्ष के उन दिनों में मुकितवाहिनी के हाथों मारे जाने से जो लोग बच गए थे उनमें से कुछ किसी न किसी तरह पाकिस्तान पहुंच गए, कुछ नेपाल चले गए । हजारों की संख्या में लुक-छिप कर असम, बंगाल और बिहार में घुस गए । फिर भी जो बाकी बचे वे मेहनत-मजदूरी के किसी न किसी काम-धर्थे में लगाकर यहीं के जन-जीवन में चाप गए । इसलिए शिविर में रहकर सुरकारी अनुदान पर पलने वालों की संख्या सिर्फ़ अंगुलियों पर गिने जाने योग्य रह गई है ।

पाकिस्तान-पक्षपाती होने के कारण उन दिनों विहारियों के प्रति जो आक्रोश जा जन-जन के मन में, अब वह समय पाकर स्वयं ही ठंडा पड़

गया है, अब बंगला देश की जनता पाकिस्तान-प्रेसी भले ही न बन गई हो, पर पाकिस्तान-विरोधी नहीं रही। यों पाक-सम्पादित एक वर्ग वहां सदा रहा है, पर आम जनता जैसे उदासीन है। और ज्यों-ज्यों बंगला देश की जर्ब-अवस्था विनाश के कगार की ओर बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों यह स्वर भी मुनाई देने लगा है कि इससे तो पाकिस्तान ही अच्छा था।

पर मैं इसे पाकिस्तान के प्रति प्रेम का उदय नहीं कहूँगा। यह ठीक चैसी ही मनोवृत्ति है जैसी उन चन्द्र भारतीयों में दिखाई देती है जो यह कहते लक्ष्य अनुभव नहीं करते कि इस आजादी से तो बंगलों का राज ही अच्छा था। चर्तमान स्थिति के प्रति जसन्तोष प्रकट करने का यह एक मनो-वैज्ञानिक, मगर विवेकहीन, उद्गार-भर है।

तो तत्त्व की बात यह कि 'विहारियों' की जिस समस्या का इतना हँसामा था, अब वह समाप्त हो चुकी है। इसलिए अब उसके हल का प्रश्न भी पैदा नहीं होता। तभी भट्टो साहब ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी करार-दिली की धाक जमाने के लिए यह घोषणा कर दी कि वे विहारियों की समस्या सहृदयता से हल करने के लिए तैयार हैं। वाह रे गिरगिट तेरी चतुराई !

बंगला देश-स्थित विहारियों ने भी अब यह अनुभव कर लिया है कि जिस पाकिस्तान के लिए वे अब तक दिलोजान से कुर्बानी करते रहे, उसे उनकी चिन्ता नहीं। कैसे हतभाग्य निकले वे लोग ! देश-विभाजन के बाद, काफिरों के मुल्क में न रहना पड़े, इसलिए तो वे पाकिस्तान गए, पर पाकिस्तान के दोनों अंगों में से कहीं भी उन्हें आत्मीयता नहीं मिली। पूर्व और पश्चिम दोनों जगह अनादृत। और बंगला देश बनने पर तो सर्वथा अवांछित !

ओर भारतमाला ऐसी निर्मम कि अब वह भी अपने इन 'कुपुङों' को छाती से लगाने को तैयार नहीं।

इसलिए बद्दन और मूँछे नीची करके, मन मसोसकर, जबाज पर ताला लगाकर, जहां हैं वहां, अब किसी न किसी तरह गुजर-बसर करने के सिवाय उनके पास कोई चारा नहीं।

## अराजकता से त्रस्त और महंगाई से पस्त

बंगला देश की हालत कौसी है ? ..... आपने क्या देखा ? ..... ”

जब दस दिन तक बंगला देश के विभिन्न स्थानों की यात्रा करके मैं आपस डाका लौटा, तब जिस किसी राजनेता या सामाजिक नेता से मैं मिलता, वह मुझसे यही सवाल पूछता ।

बंगला देश में धूसते ही मुझे जबान बन्द रखने की सलाह दी गई थी । इसलिए इस प्रकार प्रश्न पूछने वालों के सामने मैं असमंजस में पड़ जाता ।

एक दिन एक लेखदाय मंत्री यही प्रश्न पूछ थैठे ।

मैंने अपनी दुविधा को छिपाने के लिए कहा—“जैसी हालत है, वैसी ही देखो है ।”

शायद वे मेरे मन की बात भांप गए हों । ओसे—“मुना है कि पत्रकारों की एक तीसरी आंख भी होती है, इसलिए सामान्य जन जो नहीं देख पाते वह भी उन्हें दिख जाता है ।”

मैंने फिर बचाव का रास्ता ढूँढा । “पत्रकारों को जबान से नहीं, कलम से बोलने की आदत होती है ।”

इसपर वे मुस्कराए ।

मेरे साथ बंगला देश के एटार्नी जनरल आए थे । उन्होंने ही मेरा परिचय दिया था और मंत्री महोदय ने भी पूर्व स्वीकृति के बिना भैंट की औपचारिकता की चिन्ता नहीं की और तुरन्त मुझसे बात करने लगे । मेरे मन पर उनकी इस सज्जनता का जसर था । इसलिए जब एटार्नी जनरल और मेरी तरफ एकसाथ देखते हुए अनुग्रह के-से स्वर में उन्होंने कहा—“फिर भी...” तब मैंने भी संकोच के साथ कहा—“हालत बच्ची नहीं है ।”

“क्या आपके यहां के गुजरात से भी खस्ता हालत है ?”—निस्संवेद  
उनका संकेत छाल-आन्दोलन के दिनों में गुजरात में फैली अराजकता की  
ओर था ।

मैंने कहा—“हां ।”

“क्या बंगला देश में आपके विहार से भी कुरी हालत है ?”—अब  
उनका इशारा जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन की ओर और उन्हीं दिनों  
समस्तीपुर बमकांड में श्री ललितनारायण मिश्र की हत्या की ओर था—यह  
समझने में मुझे देर नहीं लगी ।

मैंने फिर छढ़ता से कहा—“हां ।”

अब वे बोड़ा सहमे ।

फिर अनायास ही बोल उठे—“हां, कल अगर मुझे यहां चुने बाजार से  
३०० रुपए मन के भाव से चावल खरीदना पड़े तो मैं नहीं खरीद सकता ।”

मैंने भी छूटते ही कहा—“जब एक मंत्री का यह हाल है, तब आम  
जनता की कल्पना तो सहज ही की जा सकती है ।”

जब वे “बी० आई० पी०” का नकाब उतार, साथी की तरह बात  
करने लगे । महंगाई, अल्पसंदेशकों के साथ होने वाले व्यवहार, तथा चारों  
ओर फैली अराजकता की चर्चा स्वयं ही करने लगे । उनकी एक-एक बात  
से उस सत्य की पुष्टि हो रही थी जिसका मैंने ‘सोनार बांगला’ के विभिन्न  
स्थानों की यात्रा करके दर्शन किया था । मुझे इतना ही सन्तोष था कि वह  
सब मुझे अपनी जबान से नहीं कहना पड़ा ।

जब भारत की जनता कमरतोड़ मंहगाई के विषद्ध आत्मों प्रकट करती  
है तब सच्चारूढ़ दल के भौंपू यही कहकर जनता को चुप करना चाहते हैं  
कि यह तो संसार-भर की समस्या है, अकेले भारत की नहीं, इसलिए भारतीयों  
का और भचाना अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को न समझने का परिणाम है ।

पर बंगला देश में इस समय चीजों के जो भाव हैं, उनका जिक्र करने  
पर, संभव है, स्वदेशवासी उसपर विश्वास ही न करें ।

बंगला देश जाने से पहले कलकत्ता में जब मुझे इस स्थिति की कुछ  
भगवक पड़ी थी तो मैं स्वयं विश्वास नहीं कर सका था पर जब स्वयं आंखों से  
देख लिया तब आंख और कान का विवाद शान्त हो गया ।

### कुछ चीजों के भाव देखिए :

चावल	८/- ८० सेर
गमक	७/- ८० सेर
चीनी	१६/- ८० सेर
मुँह	१२/- ८० सेर
दाल	६/- ८० सेर
हस्ती	१२ से १५/- ८० सेर
भिट्ठी का तेल	८ से २०/- ८० सेर
सरसां का तेल	४० से ५०/- ८० सेर
बही	२०/- ८० सेर
लालभिर्च	८/- ८० छटांक
बीरा	६/- ८० छटांक
केला	१२/- ८० दर्जन
सन्तरा	४२/- ८० दर्जन
संदेश	१२/- ८० दर्जन
जलेबी	१८/- ८० दर्जन
कपड़े धोने का साबुन	४/- ८० की एक बही
नहाने का साबुन	५२/- ८० की एक बही

इसी सूची को और लम्बा न करके स्थिति की भयावहता के दिग्दर्शन के लिए इतना ही बताना काफी है।

तुरन्त प्रश्न किया जाएगा कि जब भौती भी चावल बाजार से खरीद-कर नहीं सा सकते, तब सामान्य जनता इन भावों के रहते मुज़र कैसे करती होती ?

इसका उत्तर अपनी ओर से न देकर मैं दाका के एक बरिष्ठ और बुजुर्ग अधिवक्ता के शब्दों में दूंगा ।

उन्होंने एक दिन बातचीत के दौरान कहा—“पत्रकार महोदय ! आपके देश में तो अभी ‘बरीबी हटाओ’ का नारा ही चूंज रहा है, पर हमने अपने देश में से गरीबी खत्म कर दी है ।”

मैं स्तम्भ होकर उनके मुँह की ओर देखूँ कि इतने में स्वयं ही अपनी सूक्ष्म

का भाष्य करते हुए बोले—“इस समय बंगला देश की स्थिति ऐसी है कि यहाँ गरीब रह ही नहीं सकता।”

और उनकी यह बात सुनकर मेरे सामने दाकों के हवाई अड्डे पर, सोनाली बैंक के बाहर पट्टी पर, मोती झील के प्रमुख फैशनेवल व्यापारिक क्षेत्र में, आवासित सामाज से लदे चट्टांव के खास बाजार के अन्दर और बाहर हर बस-अड्डे और रेल-स्टेशन पर, एवं आम सड़कों पर, किसी भी साथ पदार्थ के लिए अपनी नंगी हथेली फैलाए उन भिखारियों की भी इ उपस्थित हो गई जिनके पास तिबाय भीख के लिए हाथ फैलाने के और कोई चारा नहीं रहा था। इन निरीह लोगों को बंगला देश के देहात से खींचकर किस प्रकार पेट की आग शहरों की ओर भगा रही है, और बंगला देश के शहरों में भी जब गुजारा नहीं चलता तब किस प्रकार बैंध और अबैंध उपायों से उनके छट्ठ के छट्ठ सीमा पार करके भारतीय प्रदेश में प्रवेश कर रहे हैं, और ‘इमर्जेन्सी’ के बाद से कलकत्ता के फुट पाथों पर भिखारियों की संख्या अप्रत्याशित रूप से क्यों बढ़ गई है—इन सबका उत्तर अनायास मिल गया।

तुरन्त एक और लगता प्रस्तु किया जाएगा कि बंगला देश के शहरों में आखिर १२/-८० दर्जन के भाव के केले, ४२/-८० दर्जन के भाव के सन्तरे, ८०/-८० सेर के भाव के सेव और १००/-८० सेर के भाव के अंगूर खाने वाले लोग अबर नहीं हैं तो ये चीजें वहाँ बाजार में बिकती ही नहीं हैं ?

किसने कहा कि इन चीजों के लारीदार नहीं हैं ? असलियत यह है कि इस समय बंगला देश में दो प्रमुख वर्ष हैं—एक भिखारियों का और दूसरा उन नवघनपतियों का जिन्होंने तस्करी और काले धन के बल पर अपनी समानान्तर सरकार बना रखी है। जिनके पास बेहिसाब पैसा आता है उन्हें बेहिसाब पैसा लंब करने में दद्द भी नहीं होता।

बंगला देश के दही की मैने बहुत तारीफ सुनी थी। एक दिन उसका स्वाद लेने के लिए मैने हलवाई से एक रुपये का दही मांगा। उसने एक रु० का दही देने से मना कर दिया और कहा कि कम से कम सवा रु० का (एक छठांक) दही मिल सकता है।

उभी मैने देखा कि एक सज्जन आए और नकद ८०/- रुपए देकर चार सेर दही की हाड़ी हलवाई से लेकर चलते बने।

मैं देखता रह गया ।

(यह स्मरणीय है कि कानूनन भारतीय रथया मूल्य की रक्षित से बंगला-देश के रथये के बराबर है ।)

ये नवघनाद्य लोग कौन हैं ? क्या केवल व्यापारी ? या राजनेता भी ? हाँ, चतुर व्यापारी और उनसे सांठ-माठ रखने वाले राजनेता—दोनों ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नवघनाद्यों में सबसे अधिक संख्या सत्तास्थङ् दल के लोगों की है । पिछले तीन सालों में नये लक्षपतियों की जो बड़ी जमात पैदा हो गई है, वह वही है जो लाइसेंस-परमिट देने वाली है या लेने वाली है । तस्करी और कालाबाजार में भी इन दोनों वर्गों की समान साझेदारी है ।

इस तथ्य ने उस रहस्य पर से भी पर्दा हटा दिया जिसके कारण बंग-बन्धु को आपात स्थिति घोषित करने के लिए विवश होना पड़ा । आपात स्थिति घोषित करने का मुख्य और तात्कालिक कारण या, अराजकता । यह अराजकता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि आम तौर पर यह कहा जाने लगा था कि ढाका के बाहर प्रशासन का कहीं नाम भी नहीं है और ढाका बाहर के अन्दर भी शाम के ५ बजे के बाद भले वर्षों की स्थियों का बाहर निकलना स्फूर्तरे से बाली नहीं है ।

इस अराजकता की ही जीलाद है—लूट, बपहरण, बलात्कार, डकौती, आगजनी और हत्या । यह अराजकता कितने बड़े पैमाने पर है, इसका अनुमान इस बात से लगाइए कि गत तीन वर्षों में बंगला देश में ११ हजार व्यक्तियों की हत्या हुई है और विभिन्न अपराधों के शिलसिले में ढेढ़ जात्य व्यक्ति गिरफ्तार किए गए हैं । उनकी संख्या कितनी है जो अपराधी होने पर भी गिरफ्तार नहीं किये जा सके, यह पता नहीं । इन अपराधियों में निस्तंदेह उन असामाजिक तत्त्वों की संख्या भी कम नहीं है जिन्हें गत वर्ष बंगला देश के मुक्तिपर्व के उपलक्ष्य में बंगबन्धु ने जेलों से छोड़ने की उदारता दिखाई थी ।

पठसन की मिलों और गोदानों को आग की चेंट कर देना, बसों, रेलों, और नावों को चाहे जब लूट लेना, पटरियां उचाड़ देना और शानों पर हृमला करके हृषियार छोन लेना—ये आये दिन की बातें हैं ।

घोड़ासाल उर्बंरक कारखाने को आग लगा दी गई जिससे कुषि की पैदावार में भारी हानि पहुंची। इद के दिन (२५ दिसम्बर, ७४) मस्तिष्ठ में नवाज पढ़ते हुए संसत्तदस्य गुलाम किवरिया को और नाथापूत्र यूनियन के अध्यक्ष डा० अब्दुल कलाम आजाद को सरे आम दिन-दहाड़े गोली से चढ़ा दिया गया और हत्यारे पकड़े नहीं जा सके। जब मैं ये पक्षितयों लिख रहा था तब भी यह समाचार आया कि अब्दुल खालिक नामक एक अन्य संसत्तदस्य की हत्या कर दी गई। इस प्रकार तब तक कुल मिलाकर ६ संसत्तदस्य मारे जा चुके थे।

बंगला देश में चारों ओर कैली इस अराजकता का एक चिचित्र पहलू और भी है। यहां राजनीतिक दलों की संख्या कम नहीं है और प्रायः सभी राजनीतिक दलों के अपने निजी सशस्त्र संगठन भी हैं। वाह और अकाल के कारण बतवर्ष जो भवंकर भूखंबरी फैली, और जिसमें सरकारी आंकड़ों के अनुसार २७ हजार और बैर-सरकारी आंकड़ों के अनुसार तीन लाख लोग मारे गए, उसने भी इन सशस्त्र संगठनों को 'तंग आमद बर्जंग आमद' बना दिया।

पर जिस विचित्र पहलू की ओर मेरा ध्यान थया वह यह था कि हत्या किए जाने वाले लोगों में तीन हजार व्यक्ति उस अवासी लीग के थे, जो वहां सत्तारूढ़ दल था।

सत्तारूढ़ दल के सदस्यों के प्रति ही जनता का इतना भीषण रोष क्यों?

तब मुझे गांधी याद आया। कितना दूरदर्शी और पक्का ज्येतिष्ठी या वह लंबोटी बाला। जब भारत में कांग्रेस ने शासन की बागडोर अपने हाथ में संभाली थी और महात्मा से इसके लिए आशीर्वाद मांगा था, तब उस वेलाग फकीर ने कहा था—“हकूमत की कुर्सी बेशक संभालो, पर कांग्रेस के त्याग-तपस्या वाले आदर्शों को भूमाकर यदि तुमने विलासितापूर्ण जीवन का आदर्श जनता के सामने पेश किया, तो याद रखो, एक दिन ऐसा भी आएगा जब जनता चुन-चुनकर कांग्रेसियों को मारेगी।”

मुझे लगता है कि बंगला देश में वह दिन आ गया था जब जनता चुन-चुनकर सत्तारूढ़ दल के लोगों को अपने कोप का भाजन बना रही थी। इसी अराजकता से उदार के लिए वहां आपात स्थिति घोषित हुई।

डाका में, राजनीति के एक अनुभवी और प्रौढ़ अध्येता ने, बंगला देश

की वर्तमान स्थिति को समीक्षा करते हुए कहा था—“मुझे लगता है, बंगला देश में एक और कान्ति होने चाही है।”

मैंने पूछा—“कब ?”

उसने कहा—“कब का तो मैं उत्तर नहीं दे सकता। न ही यह कह सकता हूँ कि उस कान्ति का स्वरूप क्या होगा। पर मुझे लगता है कि बातावरण से उस कान्ति की बच्च अवश्य आ रही है।”

इस बातीलाप के लगभग दो सप्ताह बाद ही बंगबन्धु न केवल बंगबन्धु और राष्ट्रपिता ही रहे, वे राष्ट्रपति भी बन गए। संविधान में परिवर्तन करके जनता के अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर अंकुश लगा दिया गया और सब राजनीतिक दलों को भंग करके केवल एक राजनीतिक दल—बंगला देश कुषक अभिक दल—की घोषणा हो गई।

बंगबन्धु ने बंगला देश की मुक्ति के बाद इसे द्वितीय महस्त्वपूर्ण कान्ति कहा था।

उस प्रौढ़ राजनीतिक व्येता का नवा इसी कान्ति से अभिप्राय था ?

६

## जीवट के लोग

सन् १९८० में बसु-परिवार में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम रखा गया सूरजकुमार। बचपन में ही पिता का साथा चिर से उठ गया। पर बालक था होनहार और परिश्रमी। उसने विद्याध्ययन में अपनी ओर से कसर नहीं छोड़ी।

दाका विश्वविद्यालय से किसी तरह बी० ए० पास कर यह अनाथ किशोर अहमदाबाद पहुंच गया। वहाँ एक सहृदय व्यक्ति थे केशवलाल मेहता। नीतिकार कहते हैं :

कनक - कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।

यह खाए बौराए नर वह पाए बौराय ॥

पर मेहता इससे ठीक उल्टे थे। एक कपड़ा मिल के मैनेजर थे। अभिमान उन्हें छू नहीं पाया था। युवकों को सदा आगे बढ़ाने के लिए सचेष्ट रहते थे। किशोर सूरजकुमार ने उनकी शरण ली। उन्हें उसमें होनहार होने के लक्षण दिखाई दिए।

मेहता ने अपने घर में रखकर सूरजकुमार की कपड़ा मिल-सम्बन्धी समस्त प्रशिक्षण दिवा और प्रशिक्षित हो जाने पर अपने आशीर्वाद के साथ डाका के लिए चिदा किया।

उसी अनाथ बालक सूरजकुमार ने आये जाकर डाका में दाकेश्वरी काटन मिल की स्थापना की (सन् १९२७ में) और धीरे-धीरे वह भारत के इस पूर्वी भाग के प्रमुख उद्योगपतियों में चिना जाने लगा।

उद्योगपति बन जाने पर भी अधिकों के हितों की उसने कभी उपेक्षा नहीं की। अधिकों के बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए उसने दो हाई स्कूल और दो प्राइमरी स्कूल खोला। एक कालेज खोला। एक राति-पाठशाला खोली।

कर्मचारियों के लिए मिल के अन्दर ही उसने तरणताल, कलब, पियेटर, खेतने का नैदान और एक मस्जिद तथा मन्दिर का भी निर्माण करवाया।

सूरजकुमार ने अपने गुरु और आश्रयदाता की स्मृति में उन्होंके नाम पर अपने यहाँ के कर्मचारियों को टेक्निकल ट्रैनिंग देने के लिए केशबलाल टेक्निकल इंस्टीट्यूट खोली थी, मिल में काम आने वाली कई छोटी-मोटी मशीनों का उसी इंस्टीट्यूट में निर्माण होता था। उसी इंस्टीट्यूट में बांबों के लिए अन्वर चब्बे भी बनते थे।

देश का विभाजन होने के बाद इस अवित्ता की औद्योगिक प्रतिभा का पाकिस्तान की सरकार ने भी यथोचित सम्मान किया। करती भी क्यों न। जालिर पूर्वी पाकिस्तान की समृद्धि में डाकेश्वरी काटन मिल का अपना महत्वपूर्ण स्थान था।

इस मिल की वार्षिक विक्री थी दो करोड़ सच्चह लाख रुपये। सूरजकुमार सरकार को ८३ लाख रुपये टैक्स के रूप में चुकाते थे। इस मिल में ६ हजार कर्मचारी काम करते थे और इन कर्मचारियों का मासिक वेतन का बिल बनता था—प्रत्येक लाख रुपये का।

पाकिस्तान सरकार की ओर से जो औद्योगिक प्रतिनिधिमण्डल रूप, इंगलैंड और जापान आदि देशों की औद्योगिक मतिविधियों का अध्ययन करने के लिए गया था, उसका नेतृत्व सूरजकुमार ने ही किया था। १५ जून, १९६३ को सूरजकुमार का स्वर्विवास हो गया।

इस सूरजकुमार का पुत्र है मुनीलकुमार बसु। परिवर्म, कर्तव्यनिष्ठा और औद्योगिक प्रतिभा में अपने पिता के ही सर्वथा बनुरूप।

मुनीलकुमार बसु ने अपने पिता के जीवन-काल में ही आदर्श काटन मिलत नाम से स्वतंत्र रूप से एक अलग मिल की स्थापना की थी। इस मिल ने भी पूर्वी पाकिस्तान की औद्योगिक समृद्धि में और लोगों को रोजगार देने में अच्छा बोग दिया था। पाकिस्तान सरकार ने श्री बसु की सेवाओं से प्रभान्ति होकर उन्हें 'तमगा-ए-पाकिस्तान' के चिताव से सुशृंखित भी किया।

बसु-परिवार की संकड़ी एकड़ भूमि देहात में थी। दाका शहर में ३५ मकान थे। मुनील काली का ऐसा भक्त था कि हर बर्ष दुर्गापूजा के बबसर पर भारी मेला बुटाता। कथा-वार्ता और कीर्तन की धूम रहजी। मेले में

शामिल हुआरों सोशें के भोजनाच्छादन की निश्चुलक ध्यवस्था उसकी ओह से की जाती थी।

परन्तु समय सदा एक-सा नहीं रहता। जिस सुनीलकुमार वसु नामक अवस्थि का मैने ऊपर लिख किया है, पाकिस्तान की सरकार ने उसपर राज-ब्रोह का आरोप लगाकर उसे गिरफ्तार कर लिया। साल साल की सच्च चखा दी और पचास लाल रुपये जुर्माना किया। जेल में उसे इतना कष्ट दिया गया कि वह सूखकर कांटा हो गया—उसका ८० पौँड वजन कम हो गया। हड्डियों का पिंजर रह जाने पर सबने उसके जीवन की आशा छोड़ दी।

परन्तु जब सन् १९७१ के दिसम्बर मास में याह्याखां के पैशाचिक पैर से मुक्ति के लिए अपनी जान की बाढ़ी लगाते मुक्तिवाहिनी के सैनिकों की सहायता के लिए भारत ने अपना सुनियोजित सैनिक अभियान प्रारम्भ किया तो सुनीलकुमार के अस्थि-काल में भी शनै-शनै चुप्पती प्राण-शिखा पुनः प्रदीप्त हो उठी। उसके आस्थावान् अन्तःकरण ने यह अनुभव किया कि घटनाचक्र के इस रूप-परिवर्तन में अवश्य कहीं दबी विद्यान का बंश है।

दैबी विद्यान की यह फिलासफी भी कैसी विचित्र है ! उसके पीछे किसी तर्क को ढूँढ ना बेकार है। जिनको इस प्रकार की आस्तिक बुद्धि मिली है, वे स्वयं भी उसके संबंध में कभी बहस करने को तैयार नहीं होंगे। पर उन्हें इस दैबी विद्यान में आस्था इतनी अधिक होती है कि अपने अस्तित्व से भी अधिक वे इसके अस्तित्व में विश्वास करते हैं।

दैबी विद्यान में आस्था का ही प्रमाण इसे समझना चाहिए कि एक दिन ऐसा आया जब कि वसु के चेहरे पर मुस्कान खिल उठी—जैसे निदाध-दृष्ट पुष्प-बल्लरी पर अचानक मेघ के अमृत-बिन्दु पड़ गए हों।

१५ दिसम्बर, १९७१।

और सुनील रात-भर हँसता रहा, मस्ती में झूमता रहा, जेल के सब साथियों को सुना-सुनाकर जोर से कहता रहा—“कल बंगला देश आजाद हो जाएगा।……कल बंगला देश आजाद हो जाएगा। हम जेल से छूट जाएंगे……कल हम जेल से छूट जाएंगे।”

जेल के अन्य कई हस्तमासूल रात को आराम से सोना चाहते थे। पर

सुनील का अट्टहास किसीको सोने दे, तब न ।

जेल के अधिकारियों से शिकायत हुई ।

जेलर आया ।

जेल का सुपरिटेंडेण्ट आया ।

सुनील का अट्टहास बंद नहीं हुआ ।

बंद नहीं हुई उसकी यह घोषणा—कल बंगला देश आजाद हो जाएगा ॥

कल हम जेल से छूट जाएंगे ।

जेल के अधिकारियों ने सुनील को समझा-नुशाकर और डरा-धमका-कर चुप कराना चाहा ।

पर वह शांत नहीं हुआ ।

वह अपनी दैवी घोषणा करता ही रहा ।

लोगों ने समझा कि यह पागल हो गया है ।

और यह लो, १६ दिसम्बर, १९७१ का दिन आया कि पागल की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो गई ।

पाकिस्तानी सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया । पश्चिमी पाकिस्तान से पूर्वी पाकिस्तान अलग हो गया । पाकिस्तान टूट गया ।

संसार के मानचित्र पर स्वतंत्र बंगला देश का उदय हो गया और राज-द्रोह के अपराध में बंदी सुनीलकुमार बसु तथा उसके अन्य साथियों को जेल से छोड़ने का हुक्म हो गया ।

जेल का सुपरिटेंडेण्ट भागा भागा आया । उसने सुनील बसु के चरणों को हाथ लगाकर श्रद्धा-विगलित स्वर में कहा—“दादा ! सच-सच बताना कि कल ही तुम्हें कहां से पता लग गया था कि आज बंगला देश आजाद होने वाला है और तुम जेल से छूटने वाले हो !”

दादा ने आसमान की ओर इशारा किया और अखें बंद कर लीं ।

दैवी विद्यान में उसकी आस्था और पक्की हो गई ।

हाँ, सुनील बसु छूट गया ।

पर छूटकर अब जाए कहाँ ?

कहाँ गए उसके ३५ मङ्कान ? कहाँ गई उसकी सैकड़ों एकड़ भूमि ?  
कहाँ गई उसकी विल ? कहाँ गए उसके आश्रय में पलने वाले हुजारों कर्म-  
चारी ? कहाँ गया उसका परिवार—उसके बच्चे-बच्चियाँ, भाई ? जिस आत्मी-  
शान कोठी में वह और उसका परिवार रहता था, वह कोठी क्या हुई ?

सबपर गैरों ने गैरकानूनी ढंग से कब्जा कर लिया । इन गैरकानूनी  
कब्जा करने वालों को पुलिस और प्रशासन की पुरी शह थी । सुनील बसु  
के खिलावधने की उम्मीद किसीको यी नहीं । पाकिस्तानी पुलिस और  
पाकिस्तानी प्रशासन ने परिवार वालों का भी जीना जब हराम कर दिया,  
तब वे सब भी अपनी जान बचाने के लिए कलकत्ता चले गए ।

पर पाकिस्तान के विषट्टित हो जाने के बाद नवोदित 'सोनार बांगला'  
में जेल से छूटकर, स्वतंत्र हवा में स्वतंत्रतापूर्वक सांस लेने का अधिकार  
पाकर सुनील बसु को क्या मिला ?

सच तो यह है कि उसने जिन्दा बचे रहकर उन सबकी आशाओं पर  
तुषारपात कर दिया जिन्होंने उसकी जमीन-जायदाद पर अवैध रूप से  
कब्जा कर लिया था ।

रहने के लिए कहीं कोई स्थान नहीं । गुजारे का कोई साधन नहीं ।  
जो कभी करोड़पति था, अब वह कौड़ीपति भी नहीं । जो हजारों लोगों के  
भोजनान्धादन की व्यवस्था करता था, अब इस्यं उसके रहने-सहने का कहीं कोई  
ठिकाना नहीं । जो दान-पृथ्य में लाखों लुटाता था, अब वह सचमुच दाने-  
दाने का मुहताज । सही अर्थों में दर-दर वा भिजारी, दरवेश ।

इससे तो अच्छा था कि वह जेल से छूटता ही नहीं । जेल में रहने और  
बांगे की अवस्था तो थी । या अच्छा होता कि कैद से छूटने से पहले या  
उसके बाद वह जिन्दगी की कैद से भी छूटकारा पा लेता ।

यथा वह भी तुम्हारी दैवी विधान पर आस्था बनी रहेगी !

सुनील बसु ! बोलो, तुम लूट ही बोलो । जिस दैवी विधान पर तुम्हारी  
इतनी अटूट आस्था है, क्या वह दैवी विधान सचमुच कहीं है ? या वह दैवी  
विधान तुमपर मुसीबत का पहाड़ ढहने के लिए है ?

६४ वर्षीय सुनील बसु हाड़-मांस से नहीं बना । वह लोहे से बना है ।  
अब भी अस्थि-कंकान से अधिक नहीं है, पर उसमें न जाने कहाँ से इतना जोग

और तेज भरा है कि दैवी विधान में अब भी उसकी आस्था अदिग है। परिवार वाले कलकत्ता बुलाते हैं तो वहाँ भी नहीं जाता। कहता है—“बंगला देश मेरी मातृभूमि है, मैं अपनी माँ की गोद छोड़कर कैसे जा सकता हूँ।” मुसीबत पर मुसीबत सहना मंजूर, पर न तो बंगला देश छोड़ना मंजूर, न ही गर्दन नीची करना मंजूर।

जैल से छूटने के बाद एक बार किसी समारोह में बंगबन्धु शेख मुजी-बुर्हमान से भेट हो गई। बंगबन्धु पर श्री बसु के उपकारों की गिनती नहीं। अपने राजनीतिक कार्यों के लिए जब भी कभी उन्हें पैसे की जरूरत होती, तुरन्त वे सुनील के पास पहुँच जाते और कहते “दादा ! इतना पैसा चाहिए।” और सुनील बाबू उन्हें कभी खाली हाथ न लौटाते। उन्हीं उपकारों का स्मरण करते हुए और कृतज्ञता-आपन का-सा भाव प्रदर्शित करते हुए बंगबन्धु ने पूछा—“कहिए दादा, कैसे हैं ?”

इस प्रश्न में ही जैसे यह भाव भी छिपा था कि अब तो मैं प्रधान मंत्री हूँ, इसलिए मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइए।

पर सुनील बाबू का स्वाभिमानी मन वहाँ भी अपनी आन से नहीं डिगा। उसने इतना ही कहा—“सब ठीक है।”

सुनील बाबू के एक परिचित व्यक्ति भी वहाँ थांडे थे। उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने बंगबन्धु से कहा—“शेख साहब, दादा के साथ तो इतना अन्याय हुआ है कि उसकी मिशाल कहीं लूँडे नहीं मिलेगी।”—और यह कहकर उन्होंने सुनील बाबू के साथ हुई ल्यादती का संक्षेप से वर्णन कर दिया।

बंगबन्धु ने दातों तले अंगुली बढ़ा ली और दादा के सामने चिनीत अमा-याचना करते हुए कहा—“दादा ! मुझे बिल्कुल पता नहीं था कि तुम्हारे साथ इतनी ल्यादती हुई है। मुझे सचमुच ही बहुत दुःख है।”

पिछे बंगबन्धु ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलाकर कहा—“देखो, तीन दिन के अन्दर-अन्दर दादा जिस मकान में रहा कहते थे, वह उन्हें मिल जाना चाहिए।”

पर उस घटना को भी तीन साल से ऊपर हो गए। दादा का निवास-

स्थान दादा को नहीं मिला ।

इसका क्या अर्थ समझा जाए ?

क्या बंगबन्धु ने दादा के सामने मुद्देशी बात कह दी—और मन से वह ऐसा नहीं चाहते थे ? या बंगबन्धु मन से वैसा चाहते तो थे, परन्तु प्रशासन इतना शिखिल था कि वह उनकी इच्छा पूरी नहीं कर सका ? या जिस व्यक्ति ने दादा के निवास-स्थान पर कब्ज़ा कर रखा था वह इतना प्रभावशाली था और उसने अपासरों का मूँह चांदी से इस तरह भर रखा था कि वहां प्रधान मंत्री की इच्छा भी धरी की धरी रह जाई ?

मैंने दादा से पूछा—“तो तुम बंगबन्धु से किर क्यों नहीं मिले ?”

दादा का स्वाभिमान बोला—“मैं क्यों मिलता ? प्रधान मंत्री को अपने बचन के पालन का सुद ही प्यान रखना चाहिए ।”

मकान नहीं, जमीन नहीं, जायदाद नहीं, आमदनी का कोई साधन नहीं । फिर दादा अब तक जिवा कैसे है ?

जेल से छूटने के बाद कुछ बर्ते तक रामकृष्ण मिशन के आश्रम में रहे । इस द्वीच अपने मकान, जमीन और जायदाद की वापसी के लिए अदालत में दरबास्त दी और गैरकानूनी कब्ज़ा करने वालों के विरुद्ध दावा दायर किया । सिविल कोर्ट में केस चल रहा है । पेशियां हो रही हैं । पता नहीं केस पन्द्रह साल तक चलेगा या बीस साल तक, या पचास और सौ साल तक । पता नहीं, दावा भी तब तक रहेंगे या नहीं ।

मुझे नवाब शाइस्ताखां के उस बंशज की याद आती है जो इस समय सरकार के किसी बहकमे में चपरासी है, जिसके पुरखों ने सत्रहवीं सदी में दाका का किला ईस्ट इंडिया कम्पनी को १५ लाख मासिक किराये पर दिया था और जिससे सम्बद्ध काब्ज़ात अभी तक उस चपरासी के पास सुरक्षित है । उसने भी किले पर अपना कब्ज़ा पाने के लिए सरकार पर दावा कर रखा है ।

पर वह साड़े तीन सौ साल पुरानी बात है । सामंतवादी युग की घटना है । और उसमें चपरासी का स्वभूतिपार्जित कुछ नहीं है । पर दादा का केस तो आज के प्रजातन्त्री युग का है और दादा का सब कुछ स्वभूतिपार्जित है । फिर भी वे इससे वंचित हैं । उन्हें कभी न्याय मिल पाएगा—इसमें

शक है। पर दादा चज्जव जीवट के आदमी हैं। ये राणा प्रताप की तरह जीते जी हार मानने को तैयार नहीं हैं।

दादा जिस कोठी में रहा करते थे, उसपर बेशक गैरों का कब्जा है, पर कोठी के सामने ही, कुछ फुट के फासले पर, दादा ने अपने माली, रसो-इये तथा चौकोदार आदि के रहने के लिए जो स्थान बना रखा था, उसपर गैरों का कब्जा नहीं हो पाया था। वहाँ अब भी दादा के ये पुराने सेवक ही रहते हैं।

अब दादा ने भी, सेवानगर में बाषु की कुटिया की तरह, अपनी एक छोटी-सी, सीधी-सादी कुटिया बहां बना ली है। उसी जमीन में शाकभाजी पैदा हो जाती है। एक टुकड़े में खेती भी होती है। एक गाय भी रखी हुई है। दादा के पुराने सेवक वैसे ही बफादार हैं।

और दादा का स्वाभिमान ज्यों का त्यों काथम है।

कुदरत भी कहती होगी कि कैसे जीवट के लोगों से पाला पड़ा है।

## अल्पसंख्यकों का भविष्य

देश के विभाजन के लिए वह दलील दी गई थी कि इसके बिना अल्पसंख्यकों की समस्या का और कोई समाधान नहीं है। जो लोग इस तर्क से सहमत नहीं थे, उन्होंने भी मुस्लिम लीग द्वारा अंग्रेजों की शह से पैदा की थी परिस्थितियों से विवश होकर विभाजन को स्वीकार कर लेने में ही कल्पाण समझा था।

पर विभाजन हुए चौथाई सदी बीत जाने पर भी अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान नहीं हुआ। पश्चिमी पाकिस्तान के अल्पसंख्यक पूर्णतः भारत, और पूर्वी पंजाब के अल्पसंख्यक पूर्णतः पश्चिमी पाकिस्तान चले गए। उत्तरप्रदेश के बड़े-बड़े खर्मीदार तथा नवाबी सानदान के लोग एवं कट्टर मुस्लिम लीगी भी पाकिस्तान चले गए। परन्तु जोष द-६ करोड़ मुसलमान भारत में ज्यों के त्यों बने रहे।

पूर्वी बंगाल के कुछ अल्पसंख्यक बड़े खर्मीदार कलकत्ता या पश्चिमी बंगाल में आ गए। उस रितता को भरने के लिए उनसे कहीं अधिक संख्या में बिहारी मुसलमान पूर्वी बंगाल पहुंच गए। परन्तु पूर्वी बंगाल के जोष अल्पसंख्यक—जिनकी संख्या एक करोड़ से अधिक थी—वहाँ ज्यों के त्यों बने रहे। उस समय उनके बहाँ बने रहने का सबसे बड़ा आधार यह था कि पाकिस्तान के प्रबर्तक कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना ने अल्पसंख्यकों को मुरक्का का पूरा वाप्तवासन दिया था।—जिस प्रकार भारतीय नेताओं ने भारत स्थित अल्पसंख्यकों को पूर्ण मुरक्का का वाप्तवासन दिया था।

भारत ने शुरू से ही सन्प्रदाय-निरपेक्षता को अपने संविधान का मूल स्तम्भ माना, क्योंकि उसकी मान्यता थी कि सब नागरिकों के साथ समान वर्तीव होना चाहिए, सबको न्याय मिलना चाहिए और सबको उन्नति का समान अव-

सर मिलना चाहिए। भारत की यही सांस्कृतिक परम्परा भी थी जो सदियों से बली आई थी।

परन्तु धूणा से जन्मा और ईर्ष्या से परवान चढ़ा पाकिस्तान सम्प्रदाय-निरपेक्षता को न अपने संविधान में स्थान दे सका, न अपने व्यवहार में। इतना ही नहीं, धूणा सदा धूला को जन्म देती है और प्रेम प्रेम की, इसलिए पाकिस्तान की धूटी में पड़ी यह धूणा स्वयं हल्के विष की तरह बढ़ते-बढ़ते उसके राजनीतिक शरीर का केसर बन गई।

पाकिस्तान में यह क्षुद्रदृश्यता और संकीर्णता इस हद तक बढ़ गई कि पंजाबी मुसलमान—जिनका पाकिस्तान की सेवा में और पाकिस्तान की राजनीति में बच्चेव था, समस्त गैर-पंजाबी मुसलमानों से भी पूछा करने लगे। न उन्हें सिन्धी सुहाये, न पठान, न बलोच, न बंगाली। पाकिस्तानी हुक्मरानों की दृष्टि में ये सब निचले दर्जे के नाशिक थे। जब पाकिस्तानी शासकों की दृष्टि में भीर पंजाबी मुसलमानों की यह स्थिति थी, तब पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं के प्रति उनका क्या रवैया रहा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

बंगला देश के वित्त सचिव थी कमल भूषण चौधरी ने स्वेच्छा से पाकिस्तान का वरण किया था। देश के विभाजन से पूर्व वे उच्च सरकारी पद पर थे। विभाजन के समय जब सब सरकारी अफलरों के सामने यह विकल्प रखा गया कि जो भारत में रहना चाहें, वे भारत में रहें और जो पाकिस्तान जाना चाहें, वे पाकिस्तान चले जाएं, किसीकी सर्विस पर कोई आंच नहीं आएगी, तब उन्होंने पाकिस्तान सरकार की सेवा में जाना स्वीकार किया।

मैंने पूछा—“इस निष्ठय का कारण ?”

वे बोले—“एक तो कायदे-आजम का सब नाशिकों के साथ समान बर्ताव का आश्वासन, और दूसरे यह कि नई चुनौतियों को स्वीकार करने में एक ‘एडवेंचर’ भी तो है।”

“तो यों कहिए न कि ‘एडवेंचर’ का आनन्द लेना चाहते थे।”

कमल भूषण बोले—“सचमुच। ‘एडवेंचर’ का आनन्द लेने की क्षमता का नाम ही तो जबानी है।”

“बस सिर्फ एडवेंचर ही ?”

“नहीं, सिर्फ एडवेंचर नहीं। बल्कि कहीं यह लालसा भी यत में छिपी थी कि पाकिस्तान नवा देश है, वहाँ प्रशासनिक अनुभव से सम्पन्न व्यक्तियों को तरक्की का जलदी और अच्छा अवसर मिलेगा।”

“यह तो लालच की बात हुई ?”

“हाँ, आप इसे लालच कह सकते हैं, पर मैं इसे दुनियादारी कहना पसंद करूँगा।”

“तो यों कहो न कि दुनियादारी तुम्हारे भारत-प्रेम पर हावी हो गई ?” मैंने कहा।

पर कमल भूषण विचलित नहीं हुए। उसी प्रकार स्थिरता से बोले—  
“मेरे निर्णय को आप गलत कह सकते हैं, पर नीयत पर लांछन न समाएं। सच कहूँ, तो अपनी जबानी के दिनों में मैंने भी भारत की स्वतंत्रता के स्वर्ग देखे थे और ‘बन्देमातृरम्’ में जिस भारतमाता की बन्दना की गई है उसकी मैंने भी बन्दना की थी। पर भारत के भौगोलिक रूप के बजाय मैंने भारत के जातियों को अपना आराध्य बनाया था। वे जातियाँ क्या थे, इसपर बहस नहीं करूँगा। पर उस समय जिस प्रकार महात्मा गांधी हिन्दू-मुस्लिम एकता को भारत के स्वातंत्र्य-संघर्ष की जसकी कड़ी मानते थे, वही मैं भी मानता था और मैं भी समझता था कि बहुभाषीय, बहुजातीय और बहुधर्मीय भारत का उद्धार इसी समन्वयात्मक संस्कृति के आधार पर हो सकता है।”

मैंने पूछा—“विभाजन से ऐन पूर्व के दिनों में कलकत्ता और नोवाखनी में मुस्लिम लीग के विदेले प्रचार से जो खून की होली खेली गई थी, उसके बाबजूद ?”

“हाँ, उसके बाबजूद। मेरी भारणा थी कि इतिहास में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जब मनुष्य पर पागलपन सवार हो जाता है। वह इतना बहुती बन जाता है कि दरिच्छों को भी मात कर देता है। पर मनुष्य का यह रूप क्षणिक है। आखिर मनुष्य मनुष्य है, पशु नहीं है। जावेश के लियों में उस पर पशुता भले ही हावी हो जाए, पर तूकान गुजर जाने पर उसे फिर मनुष्य बनते भी देर नहीं लगती।”

थोड़ा सक्कर बोले—“मुझे निश्चय था कि एक दिन ऐसा आएगा जब विभाजन से पैदा हुई कटुता समाप्त हो जाएगी। जब भारत और पाकिस्तान दोनों को बंदरबांध करने वाली तीसरी शक्ति के चले जाने पर स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करना पड़ेगा और राजनीतिक यथार्थ से बास्ता पड़ेगा, तब दोनों ही अपनी गलती पर पछाड़ाएंगे। और तभी वह अवसर आएगा जब इस महादेश में महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित नया राष्ट्रबाद जन्म लेगा। मुझे लगा कि अपनी ईमानदारी और कर्तव्यपरायणता की बदौलत मैं उस सही राष्ट्रबाद की भावना को आये बढ़ाने में सहायक हो सकता हूँ। मैं यह भी समझता था कि जब वह दिन आएगा तब मेरे जैसे सरकारी कर्मचारी की विनाश सेवा का दोनों देशों में सही मूल्यांकन होगा।”

“पर क्या वह दिन आया ?”

“नहीं, हरविज नहीं। भारत में गांधी की हत्या कर दी गई थी, फिर भी उसकी जात्या अमर थी, इतनी यहाँ के बातावरण में उसका संदेश घूमता रहा। पर पाकिस्तान में तो गांधी कभी था ही नहीं।”

“यह जाप कैसे कहते हैं ? सीमान्त गांधी तो वहाँ मौजूद थे।”

“हाँ, थे। पर अन्त में उन्हें यही तो कहना पड़ा न कि भारत ने विभाजन स्वीकार करके हमें भेड़ियों के मुह में छकेल दिया।”

“क्या आपको भी यही धारणा है ?”

“हाँ, मेरा भी भोह-भंग हो गया। इतने सालों तक पाकिस्तान में सेवा करने के बाद मैंने भी यही महसूस किया कि भारत का विभाजन एक बहुत बड़ी गलती था। जब मैं पाकिस्तान का चित्त सचिव बनने के बाद सिव्व में जाकर रहने लगा, तब हर दिन और हर क्षण मुझे यह अहसास होता रहा कि मैं यहाँ एक अवांछित व्यक्ति हूँ। मुझपर भारत का जासूस होने का संदेह किया जाता रहा। महत्वपूर्ण निर्णय मुझसे छिपाए जाते रहे। यह सब तब जबकि मैं मन-बचन-कर्म से पूरी ईमानदारी से पाकिस्तान की सेवा कर रहा था और मेरे कार्य के विरुद्ध कभी किसीको अंगुली उठाने का भौका नहीं मिला था।”

गहराई से सांस लेकर बोले—“जब मरहूम लियाकत अली था, जिनका पाकिस्तान के निर्माण में कायदे बाज़म के बाद दूसरा नंबर था और जो

ब्रिटिश कालीन राजनीति के मानदण्डों के हिसाब से वडे योग्य और कुचल प्रशासक थे, पाकिस्तान के प्रधान मंत्री बने, तब एक दिन सचिवालय के सभी विभागों के सचिवों की बैठक चुलाकर उन्होंने सबको सम्मोऽधित किया। उन्होंने अपनी कार्य-प्रणाली समझाई तथा पाकिस्तान सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली नीति के परिपालन में सबके सहयोग की कामना की।

बैठक की समाप्ति पर उन्होंने कहा—“पाकिस्तान के प्रशासिक विभाग में जितने भी हिन्दू उच्च पदाधिकारी हैं, मैं उन सबसे अलग, एकान्त में, अवक्षितः मिलना चाहता हूँ।”

जब मेरी बारी आई तो मैं भी उनके कमरे में था। लियाकत अली सां ने छूटते ही सबसे पहला प्रश्न मुझसे यही किया—“तुमने सर्विस के लिए पाकिस्तान को क्यों चुना ?” मैंने कहा—“सर ! सर्विस तो सर्विस है फिर जो काम में सालों से करता आ रहा था, उसको करते रहने में ही अधिक सुविधा थी।”

इसके बाद लियाकत अली सां ने मेरी आँखों में अंखें ढालते हुए एकदम नोकीला तीर छोड़ा—“क्या तुमने कभी अखण्ड भारत का स्वप्न नहीं लिया ? क्या तुम समझते हो कि तुम ईमानदारी से पाकिस्तान की सेवा कर सकते हो ? कहीं तुम हमें, या कहुँ…अपने-आपको, किसी घोषणे में तो नहीं रख रहे हो ?”

प्रश्न खुभता हुआ था और मेरे सारे कैरियर को प्रभावित करने वाला था। अनेक संभावनाएं इसके साथ नत्यों थीं। जरा-सा भी इधर-उधर होने से मैं संकट में पड़ सकता था। मैं तिलमिला था। मैंने कहा—“सर ! अस-लियरत यह है कि अब भी जब मैं रात को सोता हूँ तो मुझे अखण्ड भारत के स्वप्न आते हैं। आखिर सालों से जिस चीज़ को मन में हम पालते रहे और जिसकी सिद्धि के लिए यथासंभव प्रयत्न भी करते रहे, वह सब मन से एक-दम छूल-पूँछ जाए और उसकी याद तक नहीं आए, यह संभव नहीं है। पर जब मैं सोकर उठता हूँ, तब मैं अपने-आपको पाकिस्तान में पाता हूँ और तब मैं पाकिस्तान के प्रति निष्ठा को अपने कर्तव्य पालन का आवश्यक बंग मानता हूँ और उसके लिए कमर कसकर तैयार हो जाता हूँ। सर ! मेरे साथ ठीक वही बात है :

आई स्लैट एंड डैम्ट ईट लाइक बाज ब्यूटी,  
बट आई बोक एंड फाउंड ईट लाइक बाज ब्यूटी ।

“...और जिस दिन अपने कर्तव्यपालन में मुझे लनिक भी कोताही नजर आएगी, उसी दिन मैं सर्विस छोड़कर चला जाऊंगा, बिना इस बात की परवाह किए कि मेरा या मेरे बाल-बच्चों का क्या होता है ।”

और तब कावदे-मिलत लियाकत अली खां ने सब औपचारिकता भूल-कर मेरी पीठ ठोकी और कहा—“मैं तुम्हारी साफगोई से बहुत प्रसन्न हूँ । जाओ, अपना काम करो ।”

मैं स्तम्भित-सा यह सब सुनता रहा । फिर पूछा—“तो फिर आप पाकिस्तान में रहे क्यों नहीं ?”

“यह मुझसे न पूछकर पाकिस्तान सरकार से पूछो । मैंने अपनी ओर से कभी ऐसा कोई काम नहीं किया जो पाकिस्तान के बहित में हो, न ही मैंने कभी कोई पक्षपात या भेदभाव किया । पर मेरा हिन्दू होना ही सबसे बड़ा अपराध या । मुझपर लगातार शक किया जाता रहा । मेरे पीछे सदा गुप्तचर लगे रहे । मेरी पली और मेरे बच्चों को परेशान किया जाता रहा और पत्रकार महोश ! अब बापको क्या बताऊँ ! पीछे तो ऐसी स्थिति आ गई कि मेरी पली अपनी कमर में पिस्तील खोसे मदनि वेश में रोज रात को कोठी के मेन गेट पर पहरा दिया करती ।”

मैंने पिछले अध्याय में एक जीवट बाले व्यक्ति का जिक किया है । इस प्रकार के जीवट बाले व्यक्तियों का बंगला देश में अभाव नहीं है । पर मैंने तो लिङ्घड़ी का केवल एक दाना ही नमूने के लिए पेश किया है । गिनती चिनाने वैठूँ तो सूची लम्बी हो जाएगी ।

विभाजन के परिणामस्वरूप भारत को आजादी मिली, यह सत्य है पर इससे कितनी बड़ी विसंगति पैदा हो गई—क्या कभी किसीने इसपर भी ध्यान दिया है ?

“मेरी लाल पर ही देश का विभाजन होगा”—इस मंत्र का उद्घोषक अपने सिपहसालारों के सामने क्षुक गया और सिपहसालार भीके पर मूँछे

नीची करके सत्ता की कुसियों पर जम गए। पर इस महादेश के पूर्व और पश्चिमी भाग में वे हजारों और लाखों कांग्रेसी क्या हुए किन्होंने इस मंत्र से प्रेरणा लेकर अपना सर्वस्व देश की आजादी के लिए होम देने का संकल्प किया था। इसकी चिन्ता कब और किसने की है? वे स्वातंत्र्य-प्रेमी लोग देश के दोनों भागों में भेड़ियों के बवड़ों में ही तो सोंक दिए गए।

एक ही कार्य के लिए ये अलग-अलग पुरस्कार किसानिए? भारत में वे मंत्री बने, चिनायक बने, या अफसर बने, और अगर इनमें से कुछ नहीं बन पाए तो स्वातंत्र्य-सेनानी की पेंशन तो पा गए। इन प्रकार वे तो अपने पूर्वकृत पुण्यों का चेक भूताकर स्वर्ग-मुख का आनन्द लेने लगे पर उन्हींके साथी, समानधर्मी और समान-कर्मी, बंगला देश और सीमाप्रान्त के स्वातंत्र्य-योद्धाओं के लिए आज भी जेल, लाठी, गोली, दमन, अत्याचार और नरक के सिवाय और क्या है?

जब अल्पसंख्यकों के अविष्य की चर्चा करने लगा हूँ, तो यह स्पष्ट देखता हूँ कि वे जैसे पाकिस्तान में अवांछित हैं, वैसे ही अब बंगला देश में भी अवांछित हैं। देश की आजादी के लिए अतीत में चिन्होंने कष्ट उठाया था, भारत में भले ही वह कष्ट 'कवालिफिकेशन' गिनी जाती हो, पर पाकिस्तान या बंगला देश में तो वह 'डिसकवालिफिकेशन' ही है। बंगला देश में वे मान-सिक रूप से तो स्थानभ्रष्ट हैं ही, उन्हें शारीरिक रूप से भी स्थानभ्रष्ट करने की योजनाएँ फिजाओं में गूंजती हैं।

मैंने एक दिन रेल में चावबद्धान के एक मैनेजर से पूछा था—“बंगला देश में जो इतनी अंहगाई, अराजकता और मुसीबत है, उस सबका कारण क्या है?”

उसने कहा—“बंगला देश बन जाने के बाद जब से एक करोड़ लोग भारत से यहां आ गए हैं, तभी से यह मुसीबत है।”

ये एक करोड़ लोग कौन हैं—मैं इस बहस में क्यों पढ़ता! परन्तु उससे यह मनोवृत्ति स्पष्ट हो गई कि याहू लाखों को कौबी दरिद्रों ने जिन एक करोड़ लोगों को शरणार्थियों के रूप में भारत में जाने के लिए बाहित किया था, वे एक करोड़ लोग यदि भारत के सिर पड़े रहते तो बंगला देश के ये लोग चुश होते।

कर्त्ता नहीं, जिन लोगों ने मुनील बसु की जमीन-जायदाद पर चैरकानूनी ढंग से कब्जा कर लिया है, उनकी संघट में तो सारी मुसीबत की जड़ मुनील बसु का जेल से जिन्दा लौट आना ही है। यदि दादा को वापस जेल में डाल दिया जाए, या वे स्वयं अपनी मौत मर जाएं, तो इनकी सारी मुसीबतें समाप्त हो सकती हैं।

बंगला देश की मुकित के पश्चात् अपनी मातृभूमि में वापस लौटे एक अन्य व्यक्ति ने मुझे बताया—‘देहत में मेरी दो लाल्ह रुपये की जायदाद है जिसपर गैरों ने चैरकानूनी ढंग से कब्जा कर रखा है। जब मैंने पुलिस को रिपोर्ट की, तो यानेदार ने कहा—‘वह जायदाद तो जिसके पास है, उसीके पास रहेंगी, तुम्हें नहीं दी जा सकती। पर हाँ, हम इतना कर सकते हैं कि जायदाद के इस बर्तमान मालिक से तुमको पांच हजार रुपये दिलवा दें। तुम्हें मंजूर हो, तो बोलो। पर इसके लिए भी जर्त है कि तुम पहले अपनी ओर से पांच हजार रुपये देकर हमारी मुद्री बमं करो।’

क्या इसीका नाम न्याय है ?

पर यही न्याय है जो इस समय बंगला देश में बरता जा रहा है। भारत से लौटकर बंगला देश में जाने वाले अधिकांश शरणार्थियों को इसी प्रकार के न्याय का शिकार होना पड़ रहा है। पहले पाकिस्तानी गांवों की कूरताओं से परेशान होकर वे शरणार्थी बनकर भारत आए थे। उनमें से बहुतों ने मुकितवाहिनी के साथ कधे से कन्धा भिङ्गकर बंगला देश की आजादी के लिए बलिदान दिया था। बंगला देश की मुकित के पश्चात् उन्होंने सुल की सांस ली थी। अपनी मातृभूमि की समृद्धि के लिए उनके मन में न जाने कितने संकल्प और कितनी योजनाएं थीं। कितनी बाशाएं लेकर वे ‘सोनार बांगला’ लौटे थे। पर ‘सोनार बांगला’ ने उनके हाथ में भिजापात्र पकड़ा दिया। अब उनके पास दर-दर का भिजारी बगने के सिवाय और क्या उपाय रह गया ?

बंगला देश में भिजारियों की इतनी भरमार क्यों हो गई—इसका यह एक और नया पहलू है ?

आखिर बंगला देश के अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान क्या है—

इस सम्बन्ध में मेरी अनेक प्रकार के लोगों से बातचीत हुई ।

अनेक वर्षों से मौलाना अनुज हमीद खां भाशानी एक समाधान सुझाते रहे हैं। वह समाधान यह है कि पूर्वी बंगाल (अब बंगला देश), पश्चिम बंगाल, मणिपुर-त्रिपुरा, सिलिगुड़ी, भूटान और आसाम को मिलाकर संयुक्त बंगाल के नाम से एक अलग राज्य बनाया जाए। इस राज्य का क्षेत्रफल होगा, १, ७०,००० वर्गमील और जनसंख्या होगी दस करोड़। इस राज्य की ६० प्रतिशत आवादी बंगलाभाषी होगी और यह अपने-आपमें एक सुगठित, सम्पन्न, आत्मनिर्भर और सब तरह से समर्थ राज्य होगा।

पर मौलाना भाशानी के इस राजनीतिक महत्वाकांक्षी स्वप्न की सबसे कमज़ोर कढ़ी यह है कि मणिपुर, सिलिगुड़ी, भूटान, आसाम और पश्चिमी बंगाल की जनता तो इसकी समर्थक है ही नहीं, स्वयं बंगला देश में भी मौलाना साहब अपने अधिक समर्थक नहीं जुटा पाए। बंगला देश की मुनित के बाद, मौलाना के अपने देश में जो उनके योहे-बहुत समर्थक थे, वे भी टूट गए।

मुक्ति-संघाम के दिनों में मौलाना भाशानी अपनी बीमारी का इलाज कराने दिली आए थे। यहां मेडिकल इंस्टीट्यूट में उनका इलाज हुआ था और भारत के आतिथ्य के प्रति उन्होंने आभार भी प्रकट किया था। पर यहां से जाने के बाद उनकी नरों में फिर भारत-विरोधी खून हिलोरे लेने लगा।

मौलाना ने अपने कम्युनिज्म-प्रेम के शोक में उन दिनों माओत्से तुंग की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजा था, जिसमें लिखा था—“च्यांगकाई शेक के शासन के समय जीन में, जार के शासन के समय रस में, और ब्रिटिश शासन के समय भारत में भी ऐसे खुल्म नहीं हुए। मैं अब ८६ साल का हो च्या हूँ। इस उम्र में पाक सैनिकों ने मेरा घर नष्ट कर दिया है और मेरा पुस्त-कालय जला दिया है। मेरे परिवार का भी पता नहीं क्या हुआ?……”

पर पाक-परस्त माओं के कान पर जूँ नहीं रेंगी। मौलाना साहब की उक्त योजना में भी, संभव है, जीन की ही कुछ प्रेरणा हो। पर नदी तट के कगार पर खड़े, कन्ध में पांव लटकाए, अब ६३ वर्ष के उस बयोवृद्ध राजनीतिज्ञ को जाज अपने ही देश में कालातीत बस्तुओं में चिना जाने लगा है।

मैं भाशानी साहब की योजना से परिचित था। पर सुशी है कि जिस-जिससे भी मैंने बात की, उनमें से किसीने भी अल्पसंख्यकों की समस्या के समाधान के लिए इस योजना का उल्लेख नहीं किया।

मुझे एक पुराने फ़ारवर्ड ब्लाकिस्ट नेता मिले, जो आज भी सुभाष बोस के उसी प्रकार भक्त हैं। जिस प्रकार आजाद हिन्द फौज के आनंदोलन के दिनों में थे। उन्हें अब भी विश्वास है कि सुभाष बोस जीवित हैं और वे एक दिन प्रकट होंगे। जन्मना मुसलमान हैं और बंगला देश की अनधूमक सोसायटी के अध्यक्ष हैं और इसी नाते अपने देश का प्रतिनिधित्व करके अनेक देशों की बाता कर चुके हैं।

वे बोते—“मैं भारत के विभाजन में जिन्हा का दोष नहीं मानता, भारतीय नेताओं का दोष मानता हूँ। भारतीय नेताओं से भूल १९४६-४७ में नहीं हुई, १९४०-४१ में हुई—जब कोकिनाडा में हुए कांग्रेस के महाधिवेशन में देशबन्धु चितरंजनदास ने देश के अल्पसंख्यकों (मुसलमानों) को रियायतें देने का प्रस्ताव रखा था और अन्य भारतीय नेताओं ने उसे अस्वीकार कर दिया था। उसके बाद बुबारा यह भूल १९४७ में हुई जब देश के अनेक राज्यों में कांग्रेस ने सत्ता संभाली, किन्तु उसमें मुस्लिम अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व देने से कांग्रेस ने इन्कार कर दिया। सन् १९४६ में जिस तरह अन्तरिम सरकार में मुसलमानों को शामिल किया गया था, यदि उसी तरह सन् ३७ में कर दिया जाता तो यह नीवत न आती।”

मैंने कहा—“यह तो आप दूर की बात करने लगे।”

तो बोले—“पास की बात करने के लिए ही दूर की बात सीखकर लाया हूँ। इस समय बंगला देश की जो दुरबस्था है उसके लिए भी मैं भारतीय नेताओं को ही दोष देता हूँ।”

मैं चौका—“सो कैसे?”

उन सम्बन्धने कहा—“हमारे मुक्ति-प्रयासों में सहायता करके भारत ने हमें मुक्त करा दिया, इसके लिए हम उसके बाभारी हैं। पाकिस्तान के अत्याचारों से हम पीड़ित थे, इसीलिए पाकिस्तान के दूटने पर हमें कोई रंज नहीं हुआ। पर हमें रंज इस बात का है कि पाकिस्तान को तोड़ने के बाद, वजनी शक्ति, आदर्शवादिता और विजय की बुन्दुभि बजाते हुए भारतीय लेता

हमें अनाथ छोड़ गए।"

मैंने कहा—“अनाथ कहाँ छोड़ गए। आपका घर आपको सौंप दिया। आप मुद्र बालिंग हैं। अब अपना घर संभालिए।”

“आप मेरी बात का मर्म नहीं समझते। हमें अफसोस है तो इसी बात का है कि जब सब कुछ भारत के हाथ में था तो वह बंगला देश का शासन भ्रष्ट लोगों के हाथ में क्यों सौंप दया।”

“बंगबन्धु के शासन को आप क्या कहेंगे?”

“हाँ, हाँ, मैं उसीको तो कह रहा हूँ। बंगबन्धु को नहीं, उनके शासन को। ऊपर से भीते तक सर्वत्र ऋष्टाचार ही ऋष्टाचार। बंगबन्धु के प्रति हमारे हृदयों में प्रेम है, हम उनका आदर करते हैं। उनके त्याग और बलिदान के प्रति हमारे मस्तक अद्भा से नत हैं। पर वे सुविकास हैं, सुप्रशासक नहीं।”

“तो आपकी दृष्टि में भारत को क्या करना चाहिए था?”

“भ्रष्ट लोगों के हाथ में सत्ता सौंपने के बजाय अच्छा होता कि भारत बंगला देश का शासन मुद्र संभाल लेता।”

मैं उस मुसलमान सज्जन के मुंह की ओर ताकने लगा। यदि किसी हिन्दू ने यह बात कही होती तो शायद उसका कुछ और वर्ण लगाया जाता। मेरे लिए यह एक सर्वथा नया दृष्टिकोण था।

मैंने असमंजस की सी स्थिति में बात को कवित्वपूर्ण रंग देने के लिए कहा—“यदि कोई युवक नदी में डूबती हुई किसी युवती को अपनी जान पर खेल-कर बना ले और फिर उसे अपने घर में डाल ले, तो उस युवक को आप क्या कहेंगे?”

वे सज्जन हँस पड़े। कुछ देर तक हँसते रहे।

फिर बार्तालाप को उसी गंभीरता के घेरे में लाते हुए बोले—“मैं किसी सामयिक आवेदा के वशीभूत होकर या भावुकतावश यह बात नहीं कह रहा हूँ। न ही इसीलिए कि आप भारतवासी हैं। पर इस तरह की बात सोचने-बाला में अकेला व्यक्ति नहीं हूँ। बल्कि मेरी तरह और अनेक लोग हैं, जो यही सोचते हैं।”

“पर उसके कुछ अन्तर्राष्ट्रीय फलितार्थ भी तो होते। इसके बलावा

पाकिस्तान तो वह कहता ही कि भारत ने अपनी विस्तारवादी और साम्राज्य-बादी मनोवृत्ति का परिचय देकर बंगला देश को हड़प लिया। अमरीका और पाकिस्तान-समवेंक अन्य देश वह आदोष लगाने से बाज़ नहीं आते कि भारत का बदा चलता तो वह पश्चिमी पाकिस्तान को भी नष्ट करके ही छोड़ता। फिर मैं आपसे पूछता हूँ कि बंगला देश की-मुस्लिम-बहुल जनता क्या हिन्दू-बहुल भारत का, भले ही वह सम्प्रदाय-निरपेक्षता का बी-जान से पालन करनेवाला हो, शासन स्वीकार कर लेती ?”

उन सुन्दरन ने पूरी गंभीरता से कहा—“भारत के शासन का अर्थ वह तो होता नहीं कि डाका को उठाकर भारत दिल्ली ले जाता। जैसे भारत के अन्य राज्यों में धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रीय पढ़ति से वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव होते हैं, वैसे ही चुनाव यहाँ पर भी होते और उन चुनावों में हमीं लोग तो—मेरा अभिप्राय बंगला देश के निवासियों से है—चुनकर आते। हमीं लोग विद्यायक, संसद्-सदस्य और मंत्री बनते और यहाँ का शासन हमीं संभालते। तब इतना अवश्य होता कि यदि बंगला देश में अकाल या बाढ़ की विधीयिका उत्पन्न होती तो सारा भारत और उसके ६० करोड़ निवासी हमारी सहायता करते और पाटे की स्थिति होने पर जैसे बेन्द्र अन्य राज्यों की क्षतिपूर्ति करता है, वैसे ही हमारी भी करता।”

किंचित् विराम के साथ उन्होंने कहा—“मैं इस बात के लिए भारतीय नेताओं की दूरदृष्टिता की प्रशंसा करता हूँ कि उन्होंने मेघालय, अरुणाचल और मिजोरम के नाम से हाल में कुछ नये राज्यों की घोषणा की है। यह उदारता भारत सरकार ही बरत सकती है। पाकिस्तान तो इस प्रकार भी बात सोच भी नहीं सकता। ये राज्य भले ही छोटे हों, किन्तु इनका पृथक् अस्तित्व स्वीकार कर लेने से उन राज्यों की जनता की राजनीतिक आकांक्षाएं पूरी होने का तो अवसर मिलता है।... मैं खुद आपसे पूछता हूँ कि यदि मेघालय और अरुणाचल की तरह बंगला देश भी पृथक् राज्य के रूप में भारत का बंग रहे तो हमें नुकसान क्या है? उल्टे हमें लाभ ही लाभ है। तब हमारे राज्य में भारत से दस गुनी महंगाई और बीस गुनी अराजकता तो न होती।”

मैं इस विशेषण से हैरान होता हूँ और बात को समाप्त करने की गरज

से कहता हूँ—‘जिनको यह बात सोचनी चाहिए, वे पता नहीं इस डंग से सोचते हैं या नहीं। मैं या आप इस विषय में फैसला करने बाते नहीं हैं।’

मैं दाका विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मोजाहदीन अहमद से मिला, जिन्होंने इतिहास और कानून की लगभग तीस पुस्तकें लिखी हैं। अल्पसंख्यकों के संबंध में उनसे भी बात चल पड़ी तो कहने लगे—“आप अल्पसंख्यकों की बात करते हैं, मैं बहुसंख्यकों की और पूरे बंगला देश की बात करता हूँ। देखिए, मैं जन्म से मुसलमान हूँ और इस्लाम में मेरी पूरी आस्था है। पर जब मैं जिथक के अकेडेमिक दृष्टिकोण से सोचता हूँ तब मुझे लगता है कि देशों और जातियों के निर्माण में धर्म से भी अधिक भूमोल सहायक होता है। मुसलमान होने पर भी अरब देशों से मेरा कोई भौगोलिक संबंध नहीं है। मेरा मक्का-नदीना और मेरा काबा बेशक वहाँ है, पर मेरा स्थानपान उनसे नहीं मिलता, मेरी भाषा उनसे नहीं मिलती, मेरा देश उनसे नहीं मिलता, मेरा रहन-सहन उनसे नहीं मिलता, मेरा इतिहास, मेरी परम्परा, मेरा साहित्य—कुछ भी तो उनसे नहीं मिलता। मेरे लिए मक्का और मदीना का भी वही महत्व है जो किसी विदेशी बौद्ध के लिए बोधगम्या, लुम्बिनी बन और कुशीनगर का है। इसलिए मैं समझता हूँ भारत से सर्वथा कटकर रहना बंगला देश के लिए संभव नहीं है—यह उसका अपने भूमोल और इतिहास के साथ ही अव्याप्त है। हाँ, हम मुसलमान हैं, इसीलिए योड़ा-बहुत पाकिस्तान के मुसलमानों के प्रति भी भोग है। पर जितना भोग पाकिस्तान के मुसलमानों के प्रति है, उससे ज्यादा भोग तो भारत के मुसलमानों के प्रति है। वही भूमोल, इतिहास और परम्परा बाली बात। पर पाकिस्तान का तानाशाही रूप हमें पसन्द नहीं। उससे हम अधा चुके हैं। यह लोकतन्त्र का, धर्मनिरपेक्षता का और समाजवाद का युग है। मैं तो बाहुत हूँ कि बंगला देश, पाकिस्तान और भारत—इन तीनों का एक महासंघ बन जाए। तीनों लोकतंत्र, धर्म-निरपेक्षता और समाजवाद को अपना राजनीतिक आदर्श घोषित करें। मुझे इसीमें बंगला देश का भविष्य सुरक्षित लगता है। हम तीनों आपस में लड़-कर बीचित नहीं रह सकते। पर बन्धुता और सीहार्द की भावना से हम

चिरजीवी हो सकते हैं।"

मैंने कहा—"प्रोफेसर ! तुमने तो पूरा लेक्चर ही शाह दिया।"

प्रोफेसर बोले—"काश करें, आदत से लांचार जो हूँ।"

एक पुराने कान्तिकारी से मैंने यही प्रश्न किया—"बंगला देश के अल्प-संख्यकों की समस्या के लिए आप क्या सोचते हैं ?"

वे बोले—"अब क्या सोचेंगे, हम तो सोच चुके जो कुछ सोचना चाहे। हमने अपनी जबानी के दिनों में जिस स्वतंत्र अखण्ड भारत की कल्पना की थी वह सब धूलि-धूमरित हो गई। हमारे सब स्वप्न मिट्टी में मिल गए। शरणार्थी बनकर हम सब पुनः भारत में पहुँच जाएं, यह मेरी आत्मा गवारा नहीं करती, न ही मेरी बुद्धि इसका औचित्य स्वीकार करती है।"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

"क्योंकि इससे हमारे जात्मसम्मान को छोट लगती है। इसके अतिरिक्त भारत के सिर पर इन एक करोड़ लोगों का वर्तिरिक्त भार ढाल देना, उनकी रोधी-रोटी की समस्या का सिरदर्द पैदा कर देना, भारत की भी कमर तोड़ सकता है, क्योंकि स्वयं भारत में आबादी की दृष्टि से प्रतिवर्ष एक आस्ट्रोलिया तैयार हो जाता है—अर्थात् वहाँ प्रतिवर्ष पचास लाख नये भुंह तैयार हो जाते हैं जिनके भोजनालादान की व्यवस्था तो भारत को हर हालत में करनी ही पड़ती है। इसके बलाका सब हिन्दुओं का बंगला देश से चला जाना बंगला देश के भी हित में नहीं है।"

"वह कैसे ?"—मैंने पूछा।

तो बोले—"सब हिन्दुओं के चले जाने पर बंगला देश में सम्प्रदाय-निरपेक्षता और लोकतंत्र की संभावना भी समाप्त हो जाएगी। तब यह पूरी तरह इस्लामिक राज्य बन जाएगा और वहाँ वैसा ही धर्मान्ध मध्यसुनीन सामन्तकालीन बातावरण बन जाएगा जैसा कि अरब देशों में है। यहाँ मुगल-कालीन हरम-राजनीति चल पड़ेगी और यह देश संसार में प्रगति की दौड़ में पिछड़ जाएगा।"

"फिर आप कुछ समाधान तो सोचते होंगे ?"—मैंने पूछा।

उन्होंने कहा—"क्यों नहीं। जिस तरह भूतपूर्व ब्रिटिश उपनिवेशों में रहने वाले नागरिकों को ब्रिटिश पारपत्र सुलभ होता है और उन्हें ब्रिटेन में

बसने की सुविधा रहती है, उसी प्रकार 'भूतपूर्व भारत' के हम निवासियों को भी सुविधा मिलनी चाहिए और हमारी सुरक्षा की बारेंटी भारत सरकार को भी देनी चाहिए, क्योंकि देश के विभाजन के समय दोनों ओर के अल्पसंख्यकों की सुरक्षा को संयुक्त जिम्मेवारी का विषय समझा गया था।"

मैंने पूछा—“यदि बंगला देश अपने यहाँ के अल्पसंख्यकों के जानमाल की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हो, तब क्या होगा ?”

उन्होंने कहा—“तब भारत सरकार को स्पष्ट रूप से यह घोषणा करनी चाहिए कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा संयुक्त जिम्मेवारी का विषय थी, और भले ही बंगला देश अपने कर्तव्यपालन में असमर्थ रहा, पर हम अपने कर्तव्यपालन से पीछे नहीं हटेंगे। इसके लिए उसे बंगला देश से एक करोड़ अल्पसंख्यकों के पुनर्वास के लिए भूमि मांगनी चाहिए और अपनी निगरानी में बंगला देश के सीमान्त पर उन सब अल्पसंख्यकों को बचाने की व्यवस्था करनी चाहिए।”

“आपके चिन्तन में खामख्याली यादा है। क्या आप समझते हैं कि इस तरह बंगला देश आसानी से भूमि देने को तैयार हो जाएगा ?”

तब वे कान्तिकारी अत्यन्त सहज भाव से बोले—“युनिया में आसानी से कहीं कुछ भी नहीं होता। मैं जानता हूँ कि बिना अंगुली टेबी किए भी भी नहीं निकलता। पर मुझे विश्वास है कि जिस बाण से राम ने बालि को मारा था, राम के तरकस में वह बाण अब भी खत्म नहीं हुआ है।”

इसके आगे बातचीत की चुंजाइश नहीं थी।

एक दिन मैं वही सबाल चारू दा से पूछ बैठा। वही चारू दा, जो नोबा-खासी में गांधी जी के साथ गए थे। ने उस समय गांधी जी के पश्चात्काल भी थे, उनके दुभाषिये भी थे, उनको बंगला भाषा सिखाने वाले भी थे, उनके पत्र-लेखक भी थे, उनके सहयोगी भी थे और उनके सेवक भी थे। ७३ चर्चित चारू दा से मैंने पूछा—“दादा ! बंगला देश के अल्पसंख्यकों के भविष्य के बारे में आप क्या सोचते हैं ? ...”

चारू दा मेरे कंधे पर स्नेह से हाथ रखते हुए बोले—“मेरे पत्रकार

बन्धु ! मैंने दुनिया के बहुत उलट-फेर देखे हैं। विभाजन से पूर्व के स्वातंत्र्य-संघर्ष के दिनों की मस्ती और सरफरोशी की तमना मुझे याद है। मुझे याद है विभाजन से ऐन पहले के नोआखाली के हत्याकाण्ड की रक्तरंजित रोमांच-कारी पटनाएँ। फिर विभाजन के बाद की डवासी-भरी, ज्वार के बाद पानी की विपरीत दिशा में ले जाने वाली भाटे की-सी भयप्रब बारदातें भी मुझे याद हैं। और आज बंगला देश का नंगापन भी अपनी आँखों से देख रहा हूँ। अभी इन आँखों से और कथा-कथा देखना चाही है, भगवान जाने ! ”

मैं देख रहा था कि झुर्मियों से और पलकों तथा भौंहों के सफेद बालों से ढकी उन बूढ़ी आँखों की कोरों में नमी जलक आई थी और चार दा कह रहे थे—‘नोआखाली के गांधी आश्रम की चुरी हालत है। वहां के सर्वोदय कार्यकर्ता और आदी कार्यकर्ता जातक की स्थिति में जी रहे हैं। आश्रम की झूमि में जो फसल खड़ी थी उसे बहुतंखक सम्प्रदाय के लोग काटकर ले गए हैं। पुलिस में रिपोर्ट करते हैं तो कोई सुनने चाना नहीं। आर्थिक तंगी इतनी अधिक है कि सब कार्यकर्ता आश्रम छोड़कर जाना चाहते हैं। क्या तुम दिल्ली जाकर गांधी जी के प्राइवेट सेकेटरी प्यारेलाल जी से आश्रम की हालत चताकर कुछ सहायता भिजवा सकते हो ! उनको चिठ्ठी लिखते हैं, तो कोई जवाब नहीं आता। यदि नोआखाली का आश्रम बन्ध हो गया तो बंगला देश में गांधी जी का अन्तिम स्मारक भी नामज्ञेष हो जाएगा।”

“दादा ! दिल्ली जाऊंगा तो प्यारेलाल जी से अवश्य मिलूंगा और नोआखाली के आश्रम के बारे में उन्हें सही स्थिति से अवगत कराऊंगा।” कहने को मैं वह कह तो गया, पर मैं समझ रहा था कि बंगला देश में इस समय जैसे हालात चल रहे हैं, उन्हें देखते हुए प्यारेलाल जी भी अधिक दिनों तक नोआखाली के आश्रम को बचा नहीं सकेंगे। शायद जाह दा भी मन में यही अनुभव करते थे, पर किर भी एक झूठी आशा के धारे के झूले पर झूल रहे थे।

क्या कहा, धारे का झूला ? सो भी झूठी आशा के धारे का !

हाँ, रसी का नहीं, धारे का ही झूला ।

मनुष्य के मन की वह कैसी निराशा-भरी स्थिति होती है जब वह धारे के झूले को भी सत्य और बदूट मान बैठता है।

मैंने कहा—“दादा, आप अल्पसंख्यकों की बात कह रहे थे।”

चाह वा बोले—“महाभारत के मुख्य पर्व की कथा याद है? भैया! बंगला देश में इस समय मुख्य पर्व चल रहा है—मुख्य पर्व। नवजात शिशु का मुख देखने के सुख की इच्छा में ही जननी प्रसव-पीड़ा बदाक्षण कर लेती है, पर इससे प्रसव-पीड़ा की भयंकरता कम नहीं होती। हमने भी नवजात बंगला देश के शिशु का मुख देखने का सुख पाया है, पर हमारी प्रसव-पीड़ा को और कोई क्या जानेगा?... जहां तक वहां के अल्पसंख्यकों के भविष्य का प्रश्न है, मैं सर्वथा निराश हूँ। मुझे कोई भविष्य नजर नहीं आता। मैंने कहा न, यह मुख्य पर्व है। यह मुख्य एक-एक करके हरेक की गद्दी पर गिरेगा। सब धराशायी हो जाएंगे। कोई नहीं बचेगा। मैं भी नहीं। विनाश...विनाश...विनाश...विनाश के सिवाय और कुछ नहीं। मुझे सामने की दीवार पर यही एक शब्द लिखा दिखाई देता है।”

८

## अरविन्द की याद में

दफतरों में काम करने वाले कर्मचारी जब चुहुरी करके घर जाने की जल्दी में होते हैं, तो दिन-भर दाना-दुनका चुगने में व्यस्त उन पंक्तियों की याद आए विना नहीं रहती जो सूर्यास्त का समय निकट जानकर बापस अपने घोसलों की ओर उड़ पहते हैं। मैं मन ही मन कविवर बच्चन की ये पंक्तियां गुनगुनाता जा रहा था :

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,  
नीड़ों से झाँक रहे होंगे—  
यह ध्यान परों में चिढ़ियों के  
भरता कितनी चंचलता है।

जब सूर्य संन्यासियों के भीर-चीर जैसी नैरिक आभा से मण्डित होकर पश्चिम-समुद्र में दुबकी लगाने की तंगारी करता है और गौए अपने बते में बंधी पंटियों को बजाती हुई चराचाह से लौटती हैं, तब गोधूलि बेला मन में सहज ही बैराग्य, आध्यात्मिकता और कवित्व के अद्भुत भाव की सृष्टि करती है।

दाका का मेन बाजार गुजर गया, जहां 'गुलिस्तान' तिनेमा है। पल्टन बाजार भी गुजर चाया। दफतरों से लौटने वाली भीड़ सूर्यास्त से पहले ही अपने घोसलों में पहुंच जाना चाहती है, इसलिए जल्दी में है। दिन में भी मुझे बाजारों में विशेष चहल-पहल और भीड़-भाड़ नजर नहीं आई थी। सूर्यास्त होते न होते तो लगभग सुनसान-सा होने लगता है।

दाका रिक्षाओं का शहर है। जिधर देखो, उधर रिक्षा। रिक्षा ही रिक्षा। सावंजनिक बसें भी चलती हैं, पर उनकी बहुलता हॉटेंगोजर नहीं हुई। तीन पहियों वाले स्कूटर भी जब वहां पहुंच गए हैं, पर उनकी संख्या

बहुत थोड़ी है।

मैं एक रिक्षा से जा रहा हूँ।

सूर्यास्त के बाद अच्छकार एकदम जपटू-सा मारता है। सड़कों पर लगी रोशनी मन्द है। इसलिए इस जपटू का जहासास हुए बिना नहीं रहता।

जिस जगह पढ़ुचता हूँ, वह एक पुरानी इमारत है।

कमरे में २५-३० व्यक्ति बैठे हैं। अधिकांश प्रौढ़, किन्तु कुछ नवयुवक भी।

शायद कमरे की विजली गई हुई है, इसलिए एक और दो बड़ी मोम-बत्तियां जल रही हैं। सामने योगिराज अरविन्द का एक चित्र रखा है। उसके आगे अमरवत्ती और धूप। एक सज्जन बंगला में अपने विचार प्रकट कर रहे हैं और जोष सब लोग ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं।

केंद्र लाइट से बैसे भी वातावरण में कुछ रोमांचकता और रहस्यात्मकता आ जाती है।

मैं चुपचाप एक ओर बैठ जाता हूँ।

बंगला भाषा न जानते हुए भी इतना तो जान ही जाता हूँ कि अरविन्द घोष की फिलासिकी के बारे में चर्चा चल रही है। जब और कुछ ध्यान से सुनता हूँ तो व्यक्त किए जा रहे विचार-सूत्र को भी पकड़ पाता हूँ। अरविन्द के विचारों से सर्वेषां अपरिचित नहीं हूँ। इसी कारण विचार-सूत्र को पकड़ने में ल्लादा उलझन नहीं होती। फिर भी पूरी तरह पकड़ नहीं पाता। एकाष्ठ सज्जन और भी बोलते हैं। उनके विचारों को पकड़ने में भी कुछ सफल और कुछ असफल होता हूँ।

अन्तिम एक सज्जन अंग्रेजी में बोलते हैं। तब विचारसूत्र पकड़ने में कठिनाई नहीं होती।

वे शुरू में ही एक प्रश्न उपस्थित करते हैं—“योगिराज अरविन्द ने जगन्माता, आदिशक्ति, महामाया, महादुर्गा आदि शब्दों से विस तत्त्व का सम्बोधन किया है, वह तत्त्व क्या है ?”

विवेचन गम्भीर है। वक्ता महोदय कह रहे हैं—“पांचाल्य लोगों का तरीका यह है कि वे ‘मिसेज’ के नाम से व्यक्ति का परिचय देते हैं, जबकि हमारी प्राचीन परम्परा यह है कि पुत्र के नाम से माता का और माता के नाम से पुत्र का परिचय दिया जाता है। हमारे यहां पितृभूमि कहने का रिवाज

नहीं है, मातृभूमि कहने का रिवाज है। मातृभूमि भी केवल भिट्ठी और पत्थर का नाम नहीं है। जो बुद्धिवादी अचेतन जड़ भूखण्ड में मातृभावना का मखौल उड़ाते हैं, वे वास्तव में बुद्धि का ही मखौल उड़ाते हैं। जहां तक केवल बुद्धिवादी तर्क का प्रश्न है—माता का शरीर भी उन्हीं पंच तत्त्वों से बना है जिनसे अन्य स्थिरों का। फिर मां अन्य स्थिरों से भिन्न क्यों है? मां के प्रति भल्कि-भाव क्यों उमड़ता है? बुद्धिवादी के पास इसका क्या उत्तर है?"

बत्ता महोदय की युक्ति-प्रणाली आकर्षक थी। मन बंधता चला गया।

"मनुष्य के शरीर के लिए स्टार्च, प्रोटीन, और चिकनाई की ज़रूरत होती है। मनुष्य के मांस में ये सब तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। प्राणि-शास्त्र की व्यक्ति गो भी मनुष्य रक्त, मांस, अस्थि और मज्जा के सिवाय और क्या है? तो फिर हम अपने पड़ोसी को ही क्यों न खाएं? आप इस प्रकार तर्क करने वाले व्यक्ति को तर्कशास्त्री भले ही कह लें, पर आप उसे सम्म व्यक्ति मानने को तैयार नहीं होते। यहां तक बुद्धि का प्रश्न है, वह तो मनुष्य को नर-मांस-भक्षण की ओर ले जाएंगी। इसलिए केवल बुद्धि से काम नहीं चलेगा, हृदय की उदात्त भावना भी चाहिए।"

मन और बुद्धि दोनों को यह बात जंचती गई।

इसके बाद बत्ता महोदय ने प्राणिशास्त्र का विवेचन करते हुए ही बताया कि मातृभावना का विकास कैसे हुआ। उन्होंने बताया कि मैंदक और सर्प वादि सरीसूपों में मां का कोई विचार नहीं होता। सन्तानि का क्या हुआ—यह भी वे नहीं जानते। कहा जाता है कि सर्पिणी भूखी होने पर स्वयं अपने अछड़ों को भी खा जाती है। सरिसृप प्राणी एक दूसरे को माता और सन्तान के सम्बन्ध से देखते ही नहीं। इसके बाद नम्बर जाता है स्तनपायी प्राणियों का। स्तनपायी प्राणियों में माता अपने स्तन का दूध पिलाकर बच्चों को पालती है। चिड़िया भी अपने अण्डे को सेती है और नब तक वे उड़ने योग्य नहीं हो जाते, तब तक उनकी देखभाल करती है। इन सब प्राणियों में जब तक बच्चे को मां की आवश्यकता रहती है, वा उसकी उपरोक्षिता रहती है, तभी तक उनमें माता और सन्तान का सम्बन्ध रहता है, उसके बाद बच्चे माता को भूल जाते हैं और माता बच्चे को भूल जाती है। प्राणियों के विकास की चरमावस्था पर है मनुष्य। वह सम्म भी है, मुसंस्कृत भी। इसीलिए उसके

मन में माता के प्रति सतत सम्मान की भावना रहती है, चाहे उसका उपर्योग रहे या न रहे।

गंभीरता के साथ उनकी वाणी की ओरस्विता भी बढ़ती गई—“इसी प्रकार मानव-जीवन के विकास के साथ मातृभावना का भी विकास हुआ है। जिन बस्तुओं का उसके ऊपर झण है और जिनके उपकार-मार से वह इस प्रकार लाभान्वित हुआ है कि उनसे उपर्युक्त होने की नहीं सोच सकता, उन्हें भी उसने माता की तरह पूज्य दुदि से देखा है। जैसे नदी और गाँव। जब धीरे-धीरे मनुष्य को यह जान होने लगता है कि वह पृथ्वी भी जनता का पोषण और संरक्षण करती है, इतना ही नहीं, मूल्य के पश्चात् भी अपने वक्षस्थल में शरण देती है, तब वह पृथ्वी को भी माता जानने लगता है। तभी उसके मुख से निकलता है—‘माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या’—यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इस प्रकार अपनी जन्मभूमि को अपनी माता के रूप में देखना विकास की अत्युत्कृष्ट अवस्था का लक्षण है। निहृष्ट अवस्था का नहीं।”

मैं मन में सोचने लगा कि जब बंकिम ने ‘वन्देमातरम्’ का मंत्र दिया और अरविन्द धोय ने उस मंत्र को चतुर्दिश्य गुणित किया था, तब उनके मन की पृष्ठभूमि में भी यही सब भावना रही होगी। इस विषय का प्रतिपादन करने वाले इस वर्ता ने उन ऋषियों की वाणी के मर्म का कितना सुन्दर विवेचण किया है।

वक्तव्य अभी समाप्त नहीं हुआ था। वर्ता महोदय कह रहे थे—“मैं इसी बात को शोड़ा और आगे बढ़ाता हूँ। पिण्ड के स्तर पर जो स्थान माता का या राष्ट्र के स्तर पर मातृभूमि का है, विलय या ब्रह्माण्ड के स्तर पर वही स्थान जगदम्बा और महामाया या महादुर्गा का है। महामाया या महादुर्गा मन्दिर में विराजमान किसी पाषाण-प्रतिमा का नाम नहीं, विलिक सृष्टि की जन्म देने वाली, उसका पालन-पोषण करने वाली जादिशक्ति का नाम है। यह जड़ नहीं है, जैतन्य की अधिष्ठात्री देवी है। इसकी प्रतिमा मन्दिर में नहीं, मनुष्य के मन में प्रतिष्ठित है। यही जगज्जननी महामाया है। यह मनुष्य के हृदयासन पर विराजमान है। इसीका चिन्मय स्वरूप मनुष्य के हृदय को जालोकित करता है।”

इसके बाद उन्होंने अरविन्दकुल दुर्गस्तोत्र का एक अंश पढ़कर सुनाया, जिसका भाव इस प्रकार था :

“हे मातः ! दुर्ग ! जगत् श्रेष्ठ भारत जाति निविल तिमिर से आच्छान्न थी । मातः तुम बगनप्रान्त में कमशः उवय हो रही हो, तुम्हारे स्वर्णीय शरीर की तिमिर-विनाशिनी आभा से उषा का प्रकाश हुआ है । आलोक-विस्तार करो, मातः ! तिमिर-हरण करो, तिमिर का विनाश करो ।”

जब वक्ता की वाणी ने विराम लिया तो जैसे जलती हुई मोमबत्तियों की रोशनी कुछ और तेज़ हो रही ।

अरविन्द सोसायटी के मंत्री महोदय गोप्ती की समाप्ति से पूर्व सब आगन्तुकों का जब धन्यवाद करने लगे तब जचानक उनका ध्यान मेरी ओर गया । अब तक वे मुझे नहीं देख पाए थे । योले—“आप नवागन्तुक प्रतीत होते हैं । आपका परिचय पाकर हम सबको प्रसन्नता होगी ।”

वैचारिक धरातल पर तावात्म्य स्थापित करने वाली इस विचार-गोप्ती में मुझे आत्मगोपन की आवश्यकता नहीं थी । इससे पूर्व बंगला देश की बातों में कई स्थानों पर ऐसे प्रसंग आए थे, अपने व्यक्तिगत को तिरोहित रखने की आवश्यकता अनुभव हुई थी । भारतीय दूतावास ने बंगला देश में प्रवेश के पहले दिन ही मुझे जो आवाह किया था, वह भी इस आत्मगोपन में कारण था । कई स्थानों पर मैंने अपना नाम ‘अद्गुल कादिर’ या ऐसा ही कुछ, जो उस समय ध्यान आ गया, बताया था और अपना बतन भी मैंने हिन्दुस्तान के बजाय मलयेशिया या सिंगापुर या हांगकांग बताया था । इस प्रकार बजनबी बने रहने से लोगों से बातचीत करने जौर स्वाभाविक प्रतिक्रिया जानने में आसानी होती थी ।

परिचय देने पर मंत्री महोदय ने कहा कि यदि अरविन्द की किलासिफी में आपकी कुछ रुचि हो तो आप भी अपने विचार प्रकट करिए ।

जैसे आत्मगोपन की आवश्यकता नहीं थी, वैसे ही अपने विचारों के गोपन की भी ज्ञावश्यकता नहीं थी । शायद उस माहौल में अपनी बात क कहना ही बनुचित होता ।

पर कुछ कहने से पहले, उपस्थित लोगों से परिचय प्राप्त करने की उत्त्पुक्ता मन में थी । जालिर बंगला देश के बुद्धिवीविर्यों में अरविन्द के

विचारों का अध्ययन-मनन करने वाले ये तोग किस वर्ग के हैं, समाज के किस स्तर के हैं ?

पता लगा इस मण्डली में हिन्दू थे, मुसलमान भी, भूतपूर्व जारीदार भी, भूतपूर्व कान्तिकारी भी, ढाका विश्वविद्यालय के प्राध्यापक भी, बकील भी, व्यापारी भी, प्रौढ़ और बृद्ध व्यक्तियों के साथ कुछ युवक भी । सभी प्रायः मुश्यक्षित थे । मुझे यह जानकर और भी आश्वर्य हुआ कि जिन सज्जन ने अंग्रेजी में अपने विचार प्रकट किए, वे मुसलमान थे, विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे, और बंगला देश में अरविन्द की फिलासिकी के विशेषज्ञ माने जाते थे ।

कहाँ इस्लाम का वह रूप जो 'बन्देमातरम्' को सहन नहीं कर सकता, जिसे उसमें मूर्तिपूजा की गण्ठ आती है, और कहाँ इन मुसलमान बन्धु के ये विचार !

मेरे सामने समस्या यह थी कि किस भाषा में अपने विचार प्रकट करूँ । बंगला मुझे आती नहीं थी । योगी-बहुत समझ-भर लेता था, एक भी वाक्य बोल नहीं सकता था । अंग्रेजी में मैं बोलना नहीं चाहता था ।

मैंने हिन्दी में अपनी बात शुरू की ।

कुछ ही वाक्य बोल पाया था कि कुछ युवक इसरार करने लगे—“अंग्रेजी में बोलिए । आप तो अंग्रेजी बहुत अच्छी तरह बोल सकते हैं ।”

मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन की एक घटना याद आ गई ।

शायद सन् १९३० के बासपास की बात है । उन दिनों पं० इन्द्र विद्या-वाचस्पति के 'अजुन' अखबार की दिल्ली में ही नहीं, समस्त हिन्दीभाषी जगत् में, बड़ी धूम थी । हिन्दी के आज के सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र 'हिन्दुस्तान' और 'नवभारत टाइम्स' का तब तक जन्म नहीं हुआ था ।

'अजुन' अखबार की जब रजत जयंती मनाई जा रही थी तब उसमें विशिष्ट अतिथि के रूप में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर उपस्थित हुए । जब उनसे आशीर्वाद के रूप में कुछ शब्द कहने की प्रार्थना की गई तो वे खड़े होकर हिन्दी में बोलने लगे ।

अंग्रेजों की और अंग्रेजी की धाक का जमाना था । रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भीतांजलि (बंगला से अंग्रेजी में अनूदित) पर विश्व साहित्य का विश्व-प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार मिल चुका था, इसलिए विश्वकवि के अंग्रेजी-ज्ञान की

भी वही धूम थी। लोग उनकी अंग्रेजी सुनना चाहते थे; इसलिए आताओं के एक वर्ग ने विश्वकवि से अंग्रेजी में बोलने की प्रार्थना की।

विश्वकवि ने बड़े शान्त भाव से कहा—“अंग्रेजी न आपकी मातृभाषा है, न मेरी, फिर मैं अंग्रेजी में क्यों बोलूँ?”

वे हिन्दी में ही बोले।

उपस्थित लोगों के मन में योगिराज अरविन्द के प्रति जैसी भक्ति है, वैसी ही भक्ति विश्वकवि के प्रति भी है, इसका मुख आभास था। इसीलिए बंगला देश के रेडियो से प्रतिदिन कुछ समय के लिए रबीन्द्र-संगीत अवस्थ होता है।

उसके बाद किसीने अंग्रेजी के लिए आश्रह नहीं किया।

मैं एक और कारण से भी हिन्दी में ही बोलना चाहता था। मैं देखना चाहता था कि बंगला देश बन जाने के पश्चात् यहाँ की जनता में हिन्दी में कही गई वात को समझने की शक्ति कितनी है।

मैंने कहा—“कुछ वक्ताओं ने इस वात की चर्चा की है कि अरविन्द घोष ने भारत को ‘सर्वोत्तम देश’ (choicest land) कहा है। यों तो हरेक को अपना देश अच्छा लगता है, पर फिर भी भारत की अपनी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो अन्य किसी देश में मुलभ नहीं हैं। इस कथन में किसी अन्य देश की अवहेलना नहीं है। अन्य देश भीतिक रॉटि से भारत से अधिक लाक्षितशाली और समृद्ध हो सकते हैं, पर आध्यात्मिक रॉटि से भारत यितना समृद्ध है, उतना अच्युतोई देश नहीं है। स्मरणातीत काल से यहाँ के अद्विमुनि इसी वात की शोषणा करते आए हैं। एक और ‘मनुस्मृति’ कहती है:

‘एतद्देशं प्रसूतस्य सकाशादपञ्जनमनः।

स्वं-न्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(समस्त संसार के मनुष्य इस देश के अप्रजन्मा मनीषियों से अपने-अपने चरित्र और सदाचार की शिक्षा लेते रहे) तो यूसरी और ‘विष्णु पुराण’ में इस देश की स्तुति करते हुए कहा गया है:

गायन्ति देवाः किल शीतकानि

घन्यास्तु ते भारत भूमि भावे।

स्वर्गपिवर्नस्य च हेतु भूते,

भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

(देवता लोग गीत गाते हैं कि जिन्होंने भारत के भूमिक्षण में जन्म लिया है, वे धन्य हैं, क्योंकि यह भूमिक्षण स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनों को देने वाला है। यहां के निवासी देवताओं से भी बढ़कर हैं।) देवताओं से बढ़कर होने का अभिप्राय यह है कि देवता केवल स्वर्ग के अधिकारी होते हैं, जबकि भारतवासी अपनी साधना के बल पर मोक्ष के भी अधिकारी बनते हैं।

“अन्य देश मनुष्य के बारे में क्या सोचते हैं, यह छोड़िए, परन्तु भारत में मनुष्य को केवल पंचतत्व का पुतला नहीं माना गया, यहां उसे ‘अमृतपुत्र’ माना गया। ‘शृज्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः’—यह यहां का शास्त्र पोष है। मैं और आप सभी अमृत के पुत्र हैं। ईसाइयत केवल हृत्यरत ईसा मसीह को ‘खुदा का बेटा’ मानकर रह गई, पर भारतीय संस्कृति की रस्ते से हृत्यरत ईसा मसीह ही क्यों हरैक मनुष्य साक्षात् खुदा का बेटा है। जब संसार के सभी मनुष्य ईश्वर-पुत्र हैं, तो एक ही पिता की सन्तान होने के नाते वे सब परस्पर भाई-भाई हैं। उनमें आपस में कलह और युद्ध की चुंजाइश ही कहां है ! गुणाइश यदि किसी चीज की है तो केवल प्रेम की, मैत्री की, बन्धुता की और स्नेह-सद्भाव की। विश्वशान्ति तथा विश्वमैत्री का इससे बढ़ा बाधार और क्या हो सकता है ?

“स्वामी विवेकानन्द जब यूरोप और अमेरिका की यात्रा करके लौटे थे, तब उन्होंने कहा था—‘मैं पहले भारत से प्यार करता था, पर अब तो इसकी धूलि का एक-एक कण मेरे लिए अत्यन्त परिच्छ है, तीर्थस्थल है।’—भारत भूमि के दिव्य मातृत्व की अनुभूति यही है।

“पर मैं केवल इसी एक कारण से इस देश को ‘सर्वोत्तम’ नहीं कहता। इसकी विशेषता के कुछ भौगोलिक कारण भी हैं। अन्य देशों का भूगोल मनुष्यहृत है, पर इस भूमिक्षण का भूगोल ईश्वरहृत है। यह बात सुनने में विशिष्ट-सी लगती है, पर यथार्थ है।\*\*\* जब तक हम हिमालय को भारत की उत्तरी सीमा मानते रहे हैं। इस हिमालय को महाकवि कालिदास ने ‘देवतात्मा’ कहा है। पर हम भारत की पाचीन अनुशुत्तियों का मनन करें तो हिमालय के पार कैसाश और मानसरोवर हमारी उत्तरी सीमा है। कैसाश

पर शिवजी के विराजमान होने का और कोई तात्पर्य नहीं है। कैलाश पर शिवजी का कोई मन्दिर नहीं है, कोई मूर्ति भी नहीं है, वह तो पौराणिक भाषा में भारत के भूगोल के वर्णन का एक तरीका है। देवता की स्थापना के द्वारा प्रत्येक भारतवासी के मन में कैलाश को जागृत सीमा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। ...इसी कैलाश के साथ लगा है मानसरोवर। इस मानसरोवर से और उसके निकटवर्ती प्रदेश से भारत की दो महान नदियों का उद्गम होता है—एक सिंधु और दूसरी ब्रह्मपुत्र। ब्रह्मपुत्र जाती है पूर्व की ओर और सिंधु जाती है पश्चिम की ओर। मानसरोवर से निकली ब्रह्मपुत्र असम और बंगला देश होती हुई बंगल की साढ़ी में गिरती है और सिंधु नदी कश्मीर तथा पाकिस्तान में होती हुई अरब की साढ़ी में जाकर गिरती है। ये दोनों विशाल नदियाँ जैसे भारत की दो विशाल भुजाएँ हैं—एक पूर्वी सीमा बनाती है और दूसरी पश्चिमी सीमा। इन दोनों विशाल नदियों के रूप में जैसे हिमालय ने इस भारत भूमिलषण को दोनों ओर से अपनी बांहों में भरकर आगोश में लिया हुआ है। इस प्रकार उत्तर में कैलाश और मानसरोवर, दक्षिण में हिन्द महासागर, और पूर्व में ब्रह्मपुत्र (अपनी सब सहायक नदियों के साथ) और पश्चिम में सिंधु (अपनी सब सहायक नदियों के साथ)—यह है भारत का प्रकृति-प्रदत्त भूगोल। मैं प्रकृति-प्रदत्त को दृष्टवर्ण कहता हूँ। ...इसी भारतभूमि में मातृत्व का आश्रान्त करके बंकिम बाबू ने 'चन्द्रमातरथ' का गंतव्य दिया और इसी भारतभूमि में दिव्यता का आश्रान्त करके अरविन्द घोष ने इसे जगदम्बा और महादुर्गा कहा। जब बंकिम बाबू कहते हैं :

तोमार प्रतिमा मढ़ी मन्दिरे मन्दिरे...\*

—तो उनका अभिप्राय किसी पाषाण प्रतिमा से नहीं होता, प्रत्युत प्रत्येक भारतवासी के हृदयासन पर विराजमान दुर्गाहरी इसी भारतभूमि से होता है।

“ यह केवल कल्पना-विलास नहीं है, प्रत्युत प्रतिदिन का अभ्यास है। आज भी प्रत्येक निष्ठावान हिन्दु प्रातः काल सोकर उठने के बाद भूमि पर पांव रखने से पहले इस इलोक का पाठ करता है :

समुद्रवस्त्रे देवि ! पर्वतस्तन मण्डले ।

विष्णुपतिनि ! नमस्तुम्यं पावस्पर्शं समस्व मे ॥

—हे धरतीमाता ! तुमने समुद्र का वस्त्र धारण किया है, पर्वत-यण तुम्हारे स्तन-मण्डल के समान हैं, तुम साक्षात् विष्णुपत्नी हो, मेरे चरण तुम्हारा स्पर्श कर रहे हैं, मुझे क्षमा करना ।

“ अब भूमि में संकेत रूप से इतना और कहना चाहता हूँ कि परमात्मा ने जिस भारतभूमि को ऐसा प्राकृतिक भूगोल प्रदान करके एक इकाई बनाया था, उसे मनुष्य ने अपनी नासमझी से विभक्त करके कई इकाइयों में बांट दिया । परन्तु जिस दिन इस भूमि की दिव्यता इस महादेश के निवासियों के मन में पुनःउभरेगी, उस दिन वह पुनः एक इकाई बन जाएगी । मेरी समिति में योगिराज अरविन्द का ऐसा ही विश्वास है । देवी के सभी भक्तजन जानते हैं कि अण्डित प्रतिमा का पूजन नहीं होता । ”

—एह कहकर मैं चुप हो गया ।

सभा विसर्जित हो गई ।

एक बृद्ध सज्जन मेरी तरफ बढ़े और मुझे गले लगा लिया ।

फिर धीरे से बोले—“क्या भारत के और सोग भी ऐसा ही सोचते हैं ?”

“मैं औरों की बात नहीं कहता । मैं तो अरविन्द की बात कहता हूँ । मुझे उनके चिन्तन में यही तत्त्व दृष्टिगोचर होता है, और इसी तरह मैं उनके पहले कान्तिकारी और बाद में योगिराज—इन दोनों रूपों में समन्वय कर पाता हूँ । अन्यथा मैं उनको पलायनवादी समझता । ”

बृद्ध सज्जन मुस्कराये । फिर बोले, “बैंया रे ! तुम्हारी बात से तो मन-प्राण चुड़ा गए । ”

बौद्धी देर तक उनके बेहरे की ओर गम्भीरता से बेखते हुए मैंने कहा —“महाराज दैलोक्य चकवर्ती आपके यहां ही रहा करते थे न ? ”

“तो आप दैलोक्य महाराज को जानते हैं ? ”

“ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जिसने भारत के कान्तिकारियों का इलिहास पढ़ा हो और दैलोक्य महाराज को न जानता हो । जिस व्यक्ति ने १४ साल तक कालेपानी की सजा भोजी, उसके बाद पाकिस्तान की जेल में जिसने

अनेक वर्षों तक जगतातार कष्ट सहे, और सावरकर और भाई परवानन्द की पीढ़ी के उस कानिंजिकारी को भारत के और लोग भले ही भूल जाएं, पर वे तो भारत को नहीं भूलें। इसीलिए तो, सन् १९५१ के प्रारम्भ में, जब देश-विभाजन के पश्चात् वे पहली बार दिल्ली गए, तो उनकी आत्मा ने वहीं निरविद्याम ले लिया, वे वापस लौटकर बंगला देश नहीं आ सके। क्या वह भी कोई दैवी विधान था कि उनका सारा जीवन जिस स्वप्न की पूर्ति में लगा रहा, वह अन्त में इस रूप में पूरा हुआ।

स्त्रीसोक्ष महाराज की स्मृति से जैसे बृद्ध सञ्जन भी इवित हो उठे। फिर बोले—“पर आपको यह कैसे पता कि वे मेरे यहां रहा करते थे?”

“आदमी पहचान लेते हैं क्याका देखकर,

खत का मजबूत भाष पेते हैं लिफाफा देखकर।”

—यह कहकर मैं हँस पड़ा।

बृद्ध सञ्जन भी हँस पड़े।

जब ये बृद्ध सञ्जन गोष्ठी की समाप्ति के बाद भेरी और बड़े चले आ रहे थे तब किसीने उनकी ओर इशारा करके मेरे काल में उनका बात कही थी।

१५ अगस्त, सन् १९७२ में अरविन्द घोष का जन्म हुआ था। आश्वर्य की बात है कि उसके ठीक ७५ वर्ष बाद १५ अगस्त, सन् १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ। जिस महापुरुष के जन्म को जब शाताधिक वर्ष बीत चुके हैं, वे अपने जीवन-काल में ही यह घोषणा कर गए थे कि एक दिन देश का विभाजन समाप्त होगा और भारत पुनः अस्तित्व होगा।

बंगला देश के आजाद होने पर योगिराज की भविष्यवाणी का एक अंश तो पूरा हो गया—कि पाकिस्तान टूट गवा, घोष भविष्यवाणी…?

## आखिर चक्रव्यूह से कैसे निकला ?

बंगला देश से मैं सिक्षिकम जाना चाहता था। उसके लिए संक्षिप्त और सीधा रास्ता था रंगपुर और पार्वतीपुर होकर जलपाइगुड़ी को। उधर से ही जाने का इरादा था। तब बंगला देश का उत्तरी भाग भी देखने को मिल जाता।

भारतीय दूतावास ने मुझे आगाह किया कि बंगला देश की उत्तरी सीमा पार करने में कठिनाई हो सकती है, इसलिए यदि उधर से जाना हो तो पहले राजशाही जाकर भारतीय दूतावास के उपकार्यालय से मुझे सही स्थिति की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

दिन में बंगला देश के एक प्रसिद्ध कान्तिकारी से घेंट हुई थी। वे १४ वर्ष के दीर्घकाल तक कारागार में रहे थे। वे कान्तिकारियों की उस पुरानी पीढ़ी के अवशेष थे जिसने कभी 'बन्देमातरम्' का गीत गाते हुए अपने बीचन काल में अस्त्रण भारत की उपासना की थी।

भारत में कान्तिकारियों की वह पीढ़ी भले ही अस्तायमान हो, किन्तु बंगला देश में वह पीढ़ी अभी तक जीवित-जागृत है। और उसके मन-प्राण में अभी तक वही ओज और ऊषा विद्यमान है। उन कान्तिकारियों में कई ऐसे हैं जो आजीवन अविवाहित रहकर कान्ति-यज्ञ के होता बने रहे। जिनकी जन्मकुण्डली में कारागार की कालकोठरी का प्रन्यवन्धन लिखा हो, वे किसी अन्य को दुलहिन क्यों बनाते?

जिनका जिकर रहा हूँ वे भी कान्ति-यज्ञ के ऐसे ही होता थे। वार्ता के प्रसंग में रंगपुर होकर जाने की बात उनके सामने भी आई होगी। वे शाम को आए और मुझसे कहने लगे—“आप उस सीमा से मत जाइए।”

“क्यों?”

‘हमारी सूचना यह है कि उस सीमा से जाना खतरे से बचाली नहीं है। रंगपुर के सीमान्त पर लगभग चालीस व्यक्तियों की हत्या हुई है। बंगला देश में जारों और फैली अराजकता के प्रत्यक्ष और वप्रत्यक्ष प्रमाण आप देख चुके हैं। आप हमारे मेहमान हैं। अबर आपके साथ कुछ अबांछनीय परिवर्त हो चया तो हम सदा के लिए कलंकित हो जाएंगे और अपने-आपको कभी क्षमा नहीं कर पाएंगे।’

‘पत्रकार का धर्म संकट से दरना नहीं है। फिर मुझे सिक्किम जो जाना है।’

‘आप रंगपुर जाने के बजाय आपस कलकत्ता जाइए, वह भी स्थल-भार्ग से नहीं, वायुमार्ग से। यही सुरक्षा का मार्ग है।’

मैंने कहा—“दाका से कलकत्ता और कलकत्ता से खिलिगुड़ी—यह तो बहुत टेढ़ा और लंबाँला रास्ता है, जब कि यहां से जलपाईगुड़ी सीधा, संक्षिप्त और अल्प व्यव-साध्य है।”

उनको लगा कि शायद अधिक खर्च से बचने की खातिर मैं जलपाईगुड़ी बाले रास्ते की जिद कर रहा हूँ। तब मेरे कान के पास मूँह लाकर बोले—“पैसे की चिन्ता मत कीजिए। यहां से सीधा कलकत्ता जाइए हवाई जहाज से। हवाई जहाज के टिकट का पैसा मैं दूँगा।”

मैं उनकी आत्मीयता से बभिभूत हो गया। आखिर मेरा और उस बुजुर्ग कान्तिकारी का क्या रिस्ता था?

क्या अस्तर्घ भारत की प्रतिमा के उपासक, अविभक्त भारत को स्वदेश कहकर उसके पौछे अपना यौवन और सर्वस्व स्वाहा कर डालने बाले, उस व्यक्ति के अन्तःकरण में, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दुरभि-तंत्रि का शिकार होकर जब विदेश बने भारत के एक पत्रकार के प्रति वही जात्मीयता का स्थान है जो भारत के अविभक्त रहने पर भी शायद दुर्लभ होता?

उनके हृदय को और अधिक ठेस पहुँचाना हृष्यहीनता होती। मैंने हृथियार डाल दिए।

उनके मुख पर हृष की रेखा उभर आई।

उधर मेरे ‘बीसा’ की अवधि समाप्ति के निकट आ गई।

जब राजशाही होकर रंगपुर और जलपाईगुड़ी जाने का समय भी नहीं

बचा। दिन-भर में ढाका से कलकत्ता की एक ही उड़ान होने के कारण इतनी जलदी विमान का टिकट मिलना भी सहज नहीं था। मैंने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के ढाका-स्थित प्रतिनिधि, अपने सहयोगी दीप्ति सेन से कहा, 'मेरे लिए विमान के टिकट की व्यवस्था कीजिए और यदि टिकट मिलने में विलम्ब हो तो 'बीसा' की अवधि बढ़ाने का प्रयत्न कीजिए।'

मुझे विश्वास था कि श्री दीप्ति सेन प्रतिष्ठित पत्रकार हैं और अर्थ से ढाका में रह रहे हैं, इस कारण अपनी जान-पहचान के आधार पर उक्त दोनों में से कोई एक काम तुरन्त करवा सकेंगे।

परन्तु अगले दिन बन्धुवर दीप्ति सेन ने आकर खबर दी—“बीसा की अवधि बढ़ाने में कम से कम दस दिन लगने की बात तो कुछ-कुछ समझ में आ गई। नौकरशाही और लालकीलाशाही दोनों संगी बहनें हैं और जहाँ उनका राज्य होता है वहाँ किसी भी काम में अनावश्यक विलम्ब स्वाभाविक है। स्वयं भारत में ही मैं इसका बखूबी अनुभव कर चुका हूँ। १६ दिसंबर, ७४ को मैंने अपने पासपोर्ट में बंगला देश का नाम जोड़ने के लिए प्रार्थनापत्र दिया था। उस संबंध में जांच-घटाल के लिए गुप्तचर विभाग के अधिकारी मेरे पास १६ फरवरी, सन् १९७५ को आए, जब कि मुझे बंगला देश से लौटे हुए भी महीना-भर हो चुका था। पर हबाई जहाज का टिकट न मिलने की बात समझ में नहीं आई।

मैंने दीप्ति सेन से कहा—“मैं समझता था कि आपको तो टिकट अनायास ही मिल जाएगा।”

दीप्ति सेन ने कहा—“यह केवल मेरा ही सवाल नहीं है। यहाँ आपके लिए टिकट कोई भी नहीं सरीद सकता। आप विदेशी जो हैं।”

जो भारतवासी कभी (सन् ७१ में) बंगला देशवासियों के लिए स्वदेशवासियों से भी अधिक महत्वपूर्ण थे, आज वे इतने अधिक विदेशी हो गए हैं कि उन्हें विमान का टिकट भी नहीं मिल सकता? मुझसे नहीं रहा गया। मैंने अपने मन का आक्रोश प्रकट करते हुए कहा—“भारतवासी या विदेशी

होना पाप है क्या ?”

“नहीं, नहीं, आप बात को समझ नहीं रहे हैं। बंगला देश की मुद्रा में आप टिकट नहीं खरीद सकते, क्योंकि आप बंगला देश के वासी नहीं हैं। भारतीय मुद्रा यहां चल नहीं सकती—वैसे भी बीस लाख (भारतीय) से अधिक लेकर आप बंगला देश में घुस नहीं सकते। अब तो केवल एक ही उपाय है—आप कहीं से भी डालर या पौण्ड लाएं तो आपके लिए टिकट खरीदा जा सकता है, अन्यथा नहीं।”

शोड़ी देर रुककर दीप्ति सेन ने एक उपाय और बताया। उनका कहना था कि कोई भेरे लिए कलकत्ता में डाका से कलकत्ता की वापसी का टिकट भारतीय मुद्रा में खरीदे और मुझे वह टिकट डाक से यहां भेज दे। कलकत्ता में तो भारतीय मुद्रा में टिकट खरीदा ही जा सकता है। तब आप यहां से कलकत्ता जा सकते हैं।

पर इसमें भी इतनी देर लग जायगी कि डाक के बाने-जाने में ही भेरे बीसा की अवधि समाप्त हो जूकी हो जी।

अब मैं स्थिति की गंभीरता को समझा। डालर या पौण्ड मैं कहां से लाऊँ। स्वलमार्ग से विसी दिशा में सीमा पार करना छतरे से खाली नहीं था। हवाई जहाज का टिकट मिलना संभव नहीं। इस विद्यमना से कैसे निवाटा जाए !

कलकत्ता में जब मैंने हवाई जहाज का टिकट खरीदा था, तभी मुझे कहा गया था कि वापसी टिकट यहीं से लेकर जाओ, नहीं तो परेशान होगे तब मैं उस बात का भर्म नहीं समझा था।

पर जब तो फँस गया।

नियत अवधि से अधिक ठहरने पर चाहे जब गिरफतार किया जा सकता हूँ। आपात स्थिति के कारण कहीं सुनवाई भी नहीं होगी। मैंने किस कुछड़ी में साधियों के मना करने पर भी बंगला देश आने का फैसला किया था !

चक्रवृह में घुस लो गया हूँ, उससे बाहर निकलने का रास्ता नहीं सूझता।

पर चक्रवृह से बाहर निकले बिना गति भी तो नहीं।

आखिर मकार संक्रान्ति के दिन, जिसके बाद मेरा बंगला देश में ठहरना अचैत होता, मैंने अलस्मुबह डाका से जैसोर जाने वाली पहली बस पकड़ी।

फिर वही 'फेरियो' का चक्कर। यहां भी तीन बार नाव से नदी पार करनी पड़ी जिसमें से एक बार ब्रह्मपुत्र का भी नम्बर आया। भागीरथी गंगा यदि बंगला देश में जाकर कहाँ पदमा और कहाँ बूढ़ी गंगा बन गई है, तो ब्रह्मपुत्र वहां जमुना कहलाती है। अब से कई साल पहले असम में भी ब्रह्मपुत्र के दर्शन कर चुका हूँ। पर बंगला देश में ब्रह्मपुत्र का जो असीम वैभव-विस्तार है, वह अतुलनीय है। एक किनारे पर खड़े होकर दूसरा किनारा नजर ही नहीं आता—ओर-छोरहीन समुद्र जैसा ही लगता है। स्टीम लॉच से पार करने में भी ढेर घंटा लगता था।

जैसोर तक पहुँचने में तीन बज गए। जैसोर से आगे बस नहीं। पर सीमा अभी १५ मील दूर और मुझे जाने की जल्दी।

तीन पहियों वाला स्कूटर चिल गया।

जैसोर का किला देखने वी इच्छा थी—जिसमें बैठकर पाकिस्तानी सेना ने ऐसी सुख्ख मौर्चावन्दी की थी कि यदि भारतीय सेना मुख्य मार्ग से आकर यहाँ उत्तरती तो कई सप्ताह तक यहाँ उत्तरी रहती। पर आज की तारीख में बंगला देश की सीमा से पार हो जाना मेरे लिए अनिवार्य था।

बंगला देश की सीमा चौकी—येट्रापोल—जब पहुँचा तब चार बज गए थे। बनगांव से शाम को ५ बजे सियालदा के लिए जाने वाली रेलगाड़ी पकड़ना चाहता था, पर अभी तो सीमा चौकी के इमाहान से गुजरना था। वह मिनटों का नहीं पट्टों का काम था।

पत्रकार होने की बुहाई थी, पर वह काम कहीं आई। जवाब मिला—“साइन में खड़े हो जाओ, जब नम्बर आएगा, अन्दर चुला लेंगे।”

यदि सूर्यास्त होने तक नम्बर नहीं आता है और चौकी पर पर्याप्त रोशनी के अभाव में उसके बाद तलाशी का कार्यक्रम झगड़े दिन के लिए स्थानित कर दिया जाता है, तो मैं बीसा की अवधि से अधिक बंगला देश में ठहरने का मुखरिय ठहराया जा सकता हूँ।

पर सूर्यास्त से पहले ही नम्बर आ गया।

मेरा सूटकेस खोलकर देखा गया। सबसे ऊपर बंगला देश-सम्बन्धी दो सचिव और सुन्दर छाँ पुस्तिकाएं रखी थीं। निरीक्षक ने पूछा—“ये कहाँ से आईं?”

“आईं नहीं, आपकी सरकार की ओर से भेट की गई।”

इस बीच मेरे पासपोर्ट पर वह नजर ढाल चुका था। बोला—“अच्छा आप पत्रकार हैं। किर तो हमारे अतिथि हैं।”

इसके बाद उसका रस्ता कुछ बदला। फिर भी तसाशी आरी रही। पूछा—“आपके पास भारतीय या बंगला देश की कितनी मुद्रा है?”

मैंने अपना पसं उसके हाथ में दे दिया। उसने मुद्रा गिनकर कहा—“ये तो बीस रुपये से ज्यादा हैं?”

“इसमें से जितनी मुद्रा आप उचित समझें, मेरे पसं में रहने वे, बाकी निकाल लें।”

इसकी शायद उसे बाबा नहीं थी। कुछ हतप्रभ हुआ।

इतने में उसकी नजर मेरी अंगूठी पर पड़ गई। पूछा—“सोने की है?”

मैंने कहा—“हाँ।”

उसने कहा—“यह आपने ‘बिकलेयर’ नहीं की?”

मैंने कहा—“बब बंगला देश में प्रवेश किया था, तब किसीने मुझसे इसे डिक्लेयर करने को नहीं कहा। अपने-आप यह बात मुझे ध्यान नहीं आई।”

उसने तेवर बदलकर कहा—“यह तो आप नहीं ले जा सकते।”

“श्रीमन्! मैं इस अंगूठी को पिछले २५ सालों से पहन रहा हूँ। यह मेरी शादी की अंगूठी है और अब तक मेरे सरीर का हिस्सा बन चुकी है। कितनी बिल चुकी है, यह भी देख लीजिए। परन्तु यदि आपको शक है कि मैंने यह बंगला देश से खरीदी है तो आप इसे मेरी अंगूठी से निकाल लीजिए, मैं बिलकुल आपत्ति नहीं कहूँगा।” और यह कहकर मैंने अपनी अंगूठी उसके आगे कर दी।

वह और हतप्रभ हुआ। फिर उसने सीधे ढंग से पूछा—“आपके पास कोई गैरकानूनी सामान हो तो स्वयं बता दीजिए।”

“मेरे पास कोई गैरकानूनी सामान नहीं है। आप कहें तो बिस्तर और हैण्ड बैग भी खोलकर दिखा दूँ। सूटकेस आप देख ही चुके हैं।”

मेरे यह कहने के बाद वह बिल्कुल निरस्त हो गवा। उसने कुली को बुलाकर कहा—“यह सांवादिक (पत्रकार) हैं—हमारे सम्माननीय अतिथि। इन्हें ठीक से बेनापोल—भारतीय सीमा—तक पहुंचाकर आओ।”

इस अग्निपरीक्षा से मैं इस मिनट में ही पास होकर निकल आया, इस पर लाइन में लगे अन्य लोग चकित हुए, क्योंकि हरेक व्यक्ति की तलाशी में २५-३० मिनट लगता तो माझी बात थी। फिर तलाशी भी कैसी—जिसमें ऐनक का सोन; जूते का तला, हुनके की नली और गुडगुड़ी, फारबटेन पेन और ट्रूथपेस्ट की ट्यूब तथा कोट-कमीज-बास्कट की जेबें और सीवन—कुछ भी नहीं छूट पाता था।

भारतीय सीमा पर जो अफसर मिला, उसने पूछा—“बंगला देश की हालत कैसी है?”

मैंने कहा—“अब एक बात्य में क्या बताऊँ। यही कह सकता हूँ कि भारत में जितनी अराजकता और महंगाई है उसकी कम से कम वस गुनी बंगला देश में है।”

अफसर ने कहा—“हाँ, जाज ही नमक से लदे आठ ट्रक हमने अपनी सीमा से उनकी सीमा में भेजे हैं।” जैसे अराजकता और महंगाई दोनों का इलाज नमक के बोरों में छिपा हो! नया भारत का नमक खाने के बाद वहाँ भारत-विरोधी भावना नहीं पनपेगी?

रात को इस बजे जब कलकत्ता पहुंचा तब मही सन्तोष था कि जीसा की अवधि समाप्त होने से दो घण्टे पहले ही मैं बंगला देश से निकल आया।

## मुजीब से मुजीब तक

मकर संकान्ति से अगले दिन, जब मैं सिलिंगम के लिए, रेल से सिलिंगुड़ी जा रहा था, तब एक सैनिक से भेट हुई। वह सैनिक अण्डमान-निको बार से आया था और अपनी बहन की शादी पर वह भी सिलिंगुड़ी जा रहा था।

मैंने बंगला देश में भी रेल का सफर किया था। उसके बाद भारत के इस रेल-सफर में एक स्पष्ट अन्तर नज़र आ रहा था। बंगला देश में हरेक यात्री के मन में एक अज्ञात आरंक और आँखों में एक अल्प भव का-सा भाव दिखाई देता था, जब कि यहां भारत में, किसी यात्री के लेहरे पर वैसे किसी भाव की लाला भी नहीं थी।

हो सकता है, यह मेरे मन का भग हो, या यहां जिस प्रकार की दुर्शिताओं से यिरा बातावरण मुझे भिला था, उसका असर हो, पर यह नज़रन्दाज करना मुश्किल था।

बंगला देश में जो कुछ देला-गुना था और वहां के भविष्य के बारे में मेरे मानस-पट्ट पर जो तस्वीर बनी थी, उससे मन पर बोझ था और मैं चाहकर भी उस बोझ से उबर नहीं पा रहा था।

बातचीत के प्रसंग में उस सैनिक यात्री को जब पता चला कि सीधा बंगला देश से आ रहा हूं, और पत्रकार हूं, तो उसने वहां के हालचाल के बारे में जिज्ञासा प्रकट की।

मैंने वहां की अराजकता और महंगाई का घोड़ा-बहुत हाल बताया तो मेरे अन्तःकरण की व्यवा भी शायद नेरे मूल की रेखाओं में झलक आई होगी। उसने पूछा—“फिर अब इधर कहां जा रहे हैं?”

“सिलिंगम और भूटान जाने का इरादा है।”

“इस जनवरी की भयंकर सर्दी के मौसम में ?”

“गमियों में तो सैर-सपाटे के इच्छुक और लोग भी चले जाते हैं। पर पहाड़ का निजी सौन्दर्य तो सदियों में ही विद्युता है—जब वहाँ भीड़-भड़का नहीं होता और प्रकृति अपने एकान्त नैसर्गिक सौन्दर्य में आकर्षक रूप धारण कर लेती है।”

“तो यों कहिए कि जब आप तकरीह के लिए जा रहे हैं ?”

बात थोड़ी-सी चुभने वाली थी।

सत्य भी कभी-कभी चुटीला हो जाता है !

पर इससे तुरन्त इन्कार करने की हिम्मत नहीं हुई।

उस सैनिक ने किसी हल्केपन से बात नहीं कही थी। बंगला देश की अध्या-कथा सुनने के बाद यह उसकी सहज प्रतिक्रिया थी। मैं मन में सोचता था कि कंचनजंघा की हिम-धबल चोटियों में और सिकिम के नाना प्रकार के पुर्णों और पादपों से अलंकृत सधनवनों की स्तरज्ञता में इस मानसिक बोझ की गठनी को फेंक आऊंगा।

पर क्या वैसा हो पाया ?

नहीं, भूटान में जा नहीं सका—उन्हीं दिनों वहाँ भीषण हिमपात हुआ था और आलागमन अवश्य हो गया था... पर गंगटोक और कलिम्पोंग का सम्मिलित सौन्दर्य भी उस बोझ से उत्थरने में सहायक नहीं हो पाया।

बंगला देश की घटनाओं का ऐसे इतना गहरा था कि यात्रा से सकुशल सौटकर घर पहुंचने के बाद भी कई दिन तक, मैं रात को अक्सर उठकर बैठ जाता और मन में सोचने लगता कि बंगला देश का क्या होगा ? भिजा-रियों और दरभारियों की लम्बी-लम्बी कतारें स्वर्ण में दिखाई देतीं।

चाहें तो, आप इसे मेरी भावुकता कह सकते हैं। पर मानव का सबसे बड़ा अभियाप्त यही है कि वह सर्वथा हृदयहीन नहीं बन सकता।

मैं बंगला देश को भूल नहीं सका—वह मेरे मन-प्राण पर छाया रहा।

पर व्याप्ति के इस विशाल रेगिस्तान में एक ही नखलिस्तान नजर जाता था और वह था बंगबन्धु गोल मुजोबुर्रहमान। विदेशों के सब समाचार-पत्र कह रहे थे कि बंगला देश को विपत्ति के इस पारावार से यदि कोई बचा सकता है तो केवल बंगबन्धु। भारत की जनता भी यहीं समझती थी। बंग-

बन्धु की कुर्बानियों को लोग भूले नहीं थे और वे बंगला देश के एकछत्र नेता थे। बल्कि भारत के लोदों के मन में अपने देश के नेताओं के बजाय भी बंगबन्धु के प्रति कहीं अधिक स्नेह और सम्मान का भाव था।

होता भी कैसे नहीं ! जिस व्यक्ति ने सारे बंगला देश को याहाला के शासन के बिरुद्ध लोहे की एक सुख्ख दीवार की तरह छड़ा कर दिया, जिसने स्वाधीन बंगला देश का स्वर्ण जनता के मन में जगा दिया, जिसने पाकिस्तान के दोनों पास्तों में हुए चुनावों में सर्वाधिक मत पाने वाले राजनीतिक दल के नेता होने के नाते पाकिस्तान का प्रधान मंत्री बनने का अधिकार पा लिया, और याहाला ने वैसी घोषणा भी कर दी, किन्तु जिसे तरुत के बजाय तरुत मिला—याहाला ने उसे गिरफ्तार ही नहीं कर लिया, प्रत्युत उसका बध कर डालने का भी जादेश दे दिया, जिस मुजीब के लिए जेल के अन्दर ही कल्प खोदकर तैयार कर दी गई—...

किन्तु इसी बीच पासा ऐसा पलटा कि पाकिस्तान की सेना ने भारतीय सेना और मुकियाहिनी की संयुक्त कमान के आगे आत्मसमर्पण कर दिया, याहाला अपदस्थ हो गए और जनाव जुलिफकार अली चुड़ो ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में अशुपूरित नेत्रों से विदा लेते हुए पाकिस्तान की गढ़ी संभाली,...

वही मुजीब जब पाकिस्तान की जेल से रिहा होकर लन्दन होते हुए दिल्ली पहुंचे थे, तब भारतीय जनता को इस व्यक्ति में नेताजी सुभाष चौह की झलक दिलाई दी थी और वह वैसे ही उम्मत हो उठी थी जैसे नेताजी सुभाष चौह की बापसी पर हो उठती ।

जिस व्यक्ति के जीवन की कोई आशा शेष नहीं बची थी, जब पूरे नी मास के बाद उसी व्यक्ति की आवाज बंगला देशवासियों ने दिल्ली के पालम हवाई अड्डे से प्रसारित होती हुई सुनी, तो वे अपने प्रिय नेता की परिचित बाणी को पहचानकर हृषोन्मत्त हो उठे ।

७ मार्च, सन् १९७१ को रेसकोर्स के मैदान में जेल मुजीब ने अपने देशवासियों को सम्बोधित करते हुए कहा था—“अपने घरों से निकल पड़ो । जो भी हथियार तुम्हारे पास मौजूद है, उसीसे दुश्मन का मुकाबला करो । जिस भी तरह हो, देश को बचाओ और किसी भी कीमत पर पाकिस्तान की नृसंस तानाशाही से बंगला देश को मुक्त करो ।”

बंगला देश की जनता ने अपने नेता का आँखान सुना और सचमुच वह सिर पर कफल बांध अपने घर से निकल पड़ी ।

पूरे नौ मास तक बंगला देश में खून की होली लेली गई । पाकिस्तानी पिशाचों ने निरीह जनता का खून बहाया और जनता ने पाकिस्तानी पिशाचों को जैन से नहीं बैठने दिया । आस्तिर भारतीय सेना के सहयोग से मुकित-बाहिनी का और जनता का स्वर्ण पूरा हुआ ।

नौ मास के इस भीषण रक्तपात के बाद १६ दिसम्बर, सन् १९७१ को नवीन बंगला देश का उदय हुआ ।

तब १० जनवरी, १९७२ का दिन आया । अचानक जनता को पता लगा कि ये सभी भाइयां आ रहे हैं । ढाका सारी रात सोया नहीं । रात-रात में सड़कों पर तोरण ढार बनाए गए, उनपर पुष्पमालाएं सज गईं । कलबों में और भोजनालयों में जनता को भृत्य गिठाई बंटने लगी । कावी नवरत्न इस्लाम और दैगोर के बीतों से ढाका रात-भर गूंजता रहा ।

दिन के ठीक पौरे ही बजे बंगलान्धु का विमान ढाका के हवाई अड्डे पर पहुंचा । भीड़ के मारे पुलिस और सेना के सब बन्धन टूट गए । बंगलान्धु को दी जाने वाली सलामी भी भीड़ में खो गई । चारों ओर भीड़ ही भीड़—सड़कों पर, बाजारों में, चौराहों पर, मकानों की छतों पर ।

जैसे लंका पर विजय के पश्चात् राम के अवोध्या लौटने पर सारी अबोध्या उमड़ पड़ी थी, ठीक जैसे ही अपने प्राणप्रिय नेता की बापती पर सारी ढाका नगरी उलट पड़ी थी ।

फिर वही रेसकोर्स का मैदान ।

जहां ७ मार्च, १९७१ को बंगलान्धु ने पाकिस्तान की तानाशाही से मुकित के लिए अपनी जनता को ललकारा था, जहां पाकिस्तान के ७२ हजार सैनिकों ने जनरल गियाही के नेतृत्व में जनरल अरोड़ा के सामने बात्यसम-पैण किया था ।

और वही रेसकोर्स का मैदान जिसके एक कोने पर सिंदेश्वरी का मन्दिर था, जिसमें कभी तरह कान्तिकारी कान्ति की दीक्षा लिया करते थे ।

जिस रेसकोर्स मैदान तक हवाई अड्डे से पहुंचने में केवल १५ मिनट लगते थे, उस दिन देह धंटे से कम नहीं लगा था । सड़कों पर जैसे जनता ही

जनता बिछी हुई थी... हजारों की संख्या में नहीं, सालों की संख्या में।

उसी रेसकोर्स मैदान में बंगला देश की जनता को भीषण संघर्ष में विक्रय के लिए बधाई देते हुए बंगबन्धु ने उन तीस लाख स्वदेशावासियों का ज़िक किया जो मुक्ति-संशाम में मारे गए और उन हजारों अबलाओं की चर्चा की जो पाकिस्तानी दरिद्रों के हाथों अपमानित और शोलभ्रष्ट की गई, तो शेख का गला भर आया, आंखें जश्न-विगलित हो उठी और पाकिस्तान के जनन्य कुर्सों के लिए आवेदन में मुट्ठियां भिज गईं। यही सब प्रतिक्रिया जनता में भी दृष्टिनोचर हुई।

जनता को विश्वास हो गया कि हमारा मरींहा आ गया—हमारा बन्धु, हमारा भाता, हमारा संरक्षक, हमारा आत्मीय, हमारा नेता, हमारा बेताज बावशाह—अब हमें किसी चीज़ की चिन्ता नहीं। अब 'सोनार बांगला' बनकर रहेगा।

पर ६ मास भी नहीं बीते थे कि ढाका की दीवारों पर 'शेख मुजीब मुर्दाबाद' और 'शेख इस्लाम का दुश्मन है' के नारे सुगाई देने लगे।

शेख-विरोधी नये-नये संगठन उभरने लगे। विरोध में जो सार्वजनिक समाएं होतीं उनमें शोताओं की संख्या बढ़ने लगी। मौलाना अब्दुल हमीद खां भाशानी इस विरोध को संगठित करने लगे। हालांकि उनका उद्देश्य स्पष्ट नहीं था। कभी मौलाना भाशानी चौन-पक्षपाती रूप अपनाते और कभी विशुद्ध राष्ट्रवादी और समाजवादी।

भाशानी अपने विचारों में स्पष्ट रहे हों, या न रहे हों, पर शेख के विरोध में जिस तरह वातावरण चनीभूत होता जा रहा था, उसका परिणाम यह हुआ कि अतिवामपंथी और अतिदक्षिणपंथी दोनों ही भाशानी के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे।

उथर पाकिस्तानी तत्त्व यह प्रचार करने लगे कि शेख इस्लाम-विरोधी हैं, क्योंकि उन्होंने भारत और रूस से दोस्ती कर रखी है।

स्थिति यहां तक पहुंच गई कि किसी सार्वजनिक सभा में, जिसमें स्लोता हजारों की संख्या में होते, जब शेख अपनी योजनाओं के पक्ष में जनता से हाथ उठाने को कहते तो उनके समर्थन में मुश्किल से एक या दो दर्बन हाथ

उठते और बाकी जनता गुमसूम जड़ भरत की तरह बैठी रहती ।

जहाँ तक शेष की बाणी के जादू का सवाल है, बंगला देश के एक व्यो-  
बृद्ध मुस्लिम नेता ने कहा था—“मैंने गांधी, नेहरू और जिन्ना—तीनों के  
भाषण सुने हैं और उन तीनों का जनता पर कितना प्रभाव पहुंचा था, यह  
भी अपनी आँखों से देखा है । परन्तु बंगवञ्चु जिस सहज भाव से अनावास  
ही जनता की भावनाओं को उद्देलित कर देते हैं, वह अनुपम है, अद्वितीय ।  
जैसे बंगवञ्चु की बाणी में जनता की चिरप्रसूपा आकौशाएं अभिव्यक्त हो  
उठती हैं !”

बंगवञ्चु की लोकप्रियता का यह जादू टूट क्यों गया ? कहाँ यथा बकतृत्व-  
कला का वह चमत्कार ?

इसका वर्णन करने से पहले मैं कुछ ऐसी अफवाहों की चर्चा करना  
चाहता हूँ जो मैंने बंगला देश के अपने प्रवास-काल में सुनी थीं ।

### पहली अफवाह

बंगला देश का एक नौजवान कहीं साल विदेश में रहकर स्वदेश लौटा  
तो अपने साथ डिवट्जरलैण्ड की एक कार भी ले आया । उसकी यह खूब-  
सुरक्षा छोटी-सी कार जब ढाका की सड़कों पर दौड़ती तो सबकी नजरें उस  
कार पर पड़तीं और लोग उसकी खूबसूरती को सराहते ।

उस कार को ढाका की सड़कों पर चलते एक सप्ताह भी नहीं बीता  
था कि कार गायब हो गई ।

बुवक ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाई । पर कोई फल नहीं निकला ।

बुवक परेशान था । तभी उसे अपने गुरु की याद आई ।

वह ढाका विश्वविद्यालय में पढ़ा था । उस विश्वविद्यालय के प्राचार्य  
थे संयद नजरुल इस्लाम जो उस समय बंगला देश के राष्ट्रपति थे ।

मुवक राष्ट्रपति के पास गया । राष्ट्रपति भी अपने भूतपूर्व छात्र को पह-  
चान गए । बुवक ने राष्ट्रपति को जटना सुनाई और पुलिस की निष्क्रियता  
की ओर संकेत किया ।

राष्ट्रपति ने प्रधान मंत्री को चिट्ठी लिखी कि इस मामले को देखें ।

प्रधान मंत्री थे बंगवन्धु। बंगवन्धु ने अबामी लीग के अध्यक्ष को चिट्ठी लिखी। अबामी लीग के उस समय अध्यक्ष थे और कमरुक्कमां, जो बाद में मंत्रिमण्डल में भी शामिल हुए थे।

कमरुक्कमां को जब प्रधान मंत्री की चिट्ठी मिली तो उन्होंने एक दिन उस युवक को अपने घर चाय पर बुलाया।

युवक की अच्छी आवभगत हुई।

चायपान के बाद कमरुक्कमां उस युवक को लेकर अपने गैरेज की ओर आए। अलग-अलग चार गैरेज और उनमें अलग-अलग चार कारें।

कमरुक्कमां ने उन चारों कारों की ओर बारी-बारी से दृश्यारा करते हुए कहा—“कामरेड, इन चारों कारों में से तुम्हें जो कार अच्छी लगे, वह ले सकते हो।”

युवक हैरान था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या नाटक हो रहा है। उसने कहा—“सर ! मेरी समझ में नहीं आता कि आप ये कारें मुझे क्यों दिला रहे हैं ?”

कमरुक्कमां ने कहा—“बंगवन्धु ने लिखा है कि तुम्हारी कार नायब हो रही है। राष्ट्रपति के तुम प्रिय छात्र रहे हो। तुम्हें कार की सज्ज ज़रूरत है, इसलिए इन चारों कारों में जिस कार को तुम चाहो ले जा सकते हो।”

युवक ने कहा—“इन चारों कारों में से कोई एक कार लेकर मैं क्या करूँगा। मुझे तो अपनी कार चाहिए। मैं बड़े जौक से उसे लाया चा।”

कमरुक्कमां ने कहा—“तुम्हारी कार तो तुम्हें नहीं मिल सकती।”

“क्यों ?”

“क्योंकि वह कारतो मेरे लड़के को पसान्द आ गई है, इसलिए वह उसी-के पास रहेगी। तुम इनमें से कोई कार ले सकते हो।”

## दूसरी अफवाह

एक बैंक में डाका पड़ा। उक्त सशस्त्र थे और बैंक को अच्छी तरह लूटने में लगे थे।

पुलिस को इत्तला मिल गई और पुलिस समय पर पहुंच गई।

पुलिस के बाते ही चारों ओर से बैक की इमारत को घेर लिया और डाकुओं पर गोली चलाना शुरू कर दिया ।

उन डकैतों में कमाल नाम का भी एक युवक था । उसकी बांह में गोली लगी तो वह चिल्लाया—“गोली चलाना बन्द करो । देखते नहीं, मैं हूँ कमाल ।”

और सचमुच कमाल हो गया । कमाल का नाम सुनते ही पुलिस ने गोली चलाना बन्द कर दिया ।

कमाल की जिस बांह में गोली लगी थी, बाद में वह बांह काटनी पड़ी । कौन आ यह कमाल ?

कमाल है ! आप कमाल को नहीं जानते । अरे यही तो हैं बंशबन्धु जैसे मुजीबुर्रहमान का बड़ा और लाडला देटा !

### तीसरी अफवाह

ये हैं श्री नासिर । व्यापार वाणिज्य मंत्रालय के कोई पदाधिकारी न होते हुए भी सब व्यापारियों के सरपरस्त और उनकी विकल्पों को हल करने वाले । किसी व्यापारी और उद्योगपति का कहीं कोई काम बटका पड़ा हो, श्री नासिर से जाकर कहिए, वे तुरन्त आपका काम बनवा देंगे ।

बड़े-बड़े साइरेंस और परमिट भी उन्हींकी मार्फत आते हैं ।

व्यापार और वाणिज्य मंत्री बंशला देश में कौन है, इससे व्यापारियों का क्या लेना-देना । वे तो केवल श्री नासिर को जानते हैं । वे एक बार नासिर के पास पहुँचे कि उनकी समस्या का समाधान हुआ ।

ऐसे शक्तिशाली और परोपकारी जीव हैं श्री नासिर । लाइसेंस और परमिट के अलावा व्यापारियों की रोजमर्रा की शिकायतें दूर करने में भी वही काम आते हैं ।

उदाहरण के लिए, सीमा पर किसी व्यापारी का सामान ट्रकों में लदा रका पड़ा है । जूँची का या और कोई विवाद है । सीमा पर तैनात सैनिक या रक्षावाहिनी के जबान ट्रकों को इधर नहीं आने दे रहे हैं ।

व्यापारी नासिर के पास जाता है । नासिर कहेंगे—“अच्छा, अभी देखता

हूं ।"

श्री नासिर स्वयं सीमा पर जाएंगे । रक्षावाहिनी के जवानों को संकेत करेंगे कि अमुक ट्रक को इधर आने दिया जाए और वे ट्रक व्यापारी के पास पहुंच जाएंगे ।

इस काम की फीस ?

फीस-बीस क्या होती है ? मोटर का पहिया भी बिना श्रीज के नहीं चलता । मोटर का पहिया ही नहीं, संसार की किसी भी मशीन का कोई पुर्खा बिना श्रीज के काम नहीं करता ।

और तो और, नौकरजाही की मशीनरी इतनी बेहत्र है कि बिना श्रीज के किसी सुरक्षारी दफ्तर में कोई फाइल एक बेज से दूसरी बेज तक नहीं सरकती ।

मशीन चलानी है तो श्रीज लगानी ही पड़ेवी ।

हाँ, किस मशीन के लिए कितनी श्रीज चाहिए, यह आप पूछ सकते हैं । पर इसका हिसाब आज तक कायदे-कानून की किसी किताब में नहीं लिखा है ।

परोपकार के काम तो सदा श्रद्धा के बल पर चलते हैं । श्री नासिर व्यापारियों का अहनिश्च हित-साधन करते हैं । अब यह उस व्यापारी की श्रद्धा पर निर्भर है, जिसका काम उका पड़ा था, कि वह अपना काम बनवाने के लिए कितना खर्च कर सकता है । उस खर्च की गिनती गणित के अंकों में नहीं होती, श्रद्धा के अंकों में होती है ।

श्री नासिर में परोपकार की यह सामर्थ्य कहां से आ गई ?

श्री नासिर बंबवन्धु के रितेदार हैं, उनके रूपापात्र हैं, इसलिए उनकी भृकुटी के इशारे पर क्या नहीं हो सकता !

### चौथी अकबाह

आइए, इनसे मिलिए । आप हैं श्री गाजी मुस्तफा कमाल ।

आपकी तारीफ ?

तारीफ यही है कि आप बंबला देश के रडकास के अध्यक्ष हैं ।

हाँ, हाँ, रेडकास का नाम कौन नहीं जानता ! यह तो संसारव्यापी संगठन है । जहाँ कहीं अकाल, बाढ़, भूकम्प, महामारी हो, वह युद्ध में हताहतों की स्थानस्था का प्रश्न हो, अबोध शिशुओं के कुपोषण की समस्या हो, विस्थापित और अभागे नर-नारियों के विवास और जीवन-धारण करने की परेशानी हो,—उन सभी समस्याओं को निपटाने में सहायता के लिए रेडकास बोले हमेशा तैयार रहते हैं । इसने बड़कर परोपकारी संस्था संसार में और कौन-सी है ?

आप ठीक कहते हैं । रेडकास के इसी मुण और क्षयाति के कारण संसार-भर के लोग इस संस्था के लिए अपना धन लुटाते हैं, नाना प्रकार की सामग्री भेजते हैं । इस सामग्री में शामिल हैं—दबाइयां, दुधचूर्ण, कम्बल, तम्बू, अनाज, कपड़े और वे सभी पदार्थ जो विपद्ग्रस्त मानवता के काम आ सकते हैं ।

इस समय सारे संसार में बंगला देश से बड़कर विपद्ग्रस्त देश और कौन-सा होगा ?

इसलिए सारे संसार की दया-माया उमड़ी यही है बंगला देश की ओर और सब लोग 'कैंस' और 'काइड' दोनों से बंगला देश की यथासम्भव सहायता करना चाहते हैं । धन भी आ रहा है, सामग्री भी आ रही है ।

इसी संस्था के अध्यक्ष हैं श्री गाजी मुस्तफा कमाल ।

किसनी बड़ी उम्मेदारी है इनकी !

कैंस कोमल और दयालु हृदय पाया होगा इन्होंने !

उनके दर्जनमात्र से ही जन्म-जन्मान्तर के पाप कट जाते होंगे !

हाँ, इनको भी बंगबन्धु ने खूसी छूट दे रखी है—जितना चाहें परोपकार करें ।

वह, इन्हें केवल इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि बंगबन्धु को बंगला देश में जनतंत्र की गाड़ी को चालू रखने के लिए और अबामी लोग के कार्यकर्ताओं को सन्तुष्ट रखने के लिए जब जितने धन की आवश्यकता हो, ये तुरन्त भेज दें ।

धन कहाँ से आता है ?

'सिमिट-सिमिट जल भरहि तलावा ।' सारे संसार से जो धन वह-

बहकर रेडकास के तालाब में इकट्ठा होता रहता है, वही काम में आता है। और अमर 'कैश' न हो, तो इतनी सामग्री जो विपद्ग्रस्तों को मुफ़्त बांटने के लिए आई पड़ी है—उसे बाजार में किसी भी कीमत पर बेचा जा सकता है। सब आपातित मान है, इसलिए उसकी कीमत भी अच्छी उठ सकती है।

विना बंगबन्धु के आशीर्वाद के गाजी मुस्तफा न इतनी बड़ी जिम्मेदारी संभाल सकते हैं, न इतना परोपकार कर सकते हैं। फिर वे बंगबन्धु के प्रति कृतज्ञ क्यों न हों!

इसी कृतज्ञता प्रकाशन के लिए गाजी मुस्तफा सारे संसार की यात्रा कर आए हैं, इंग्लैण्ड में बंगबन्धु के लिए एक आशीशान मकान सरीकर रख आए हैं और स्विस देश में बंगबन्धु के निजी नाम से दाई करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा जमा करवा आए हैं।

### पांचवीं अफवाह

शफीकुर्रहमान नामक एक युवक। देशभक्ति की ज्वाला से दीप्त। बंगला देश की मुकित का संघर्ष तुग्गा तो वह मुकितबाहिनी में शामिल हो गया। मुकित-संश्वाम में अपने शौर्य और लग्न से उसने खूब यश अर्जित किया।

जब बंगला देश पाकिस्तानी पंजे से मुक्त हो गया, तब भी देश-सेवा की उसकी तड़प बरकरार रही। इसलिए सेना में भर्ती हो गया। वहाँ वह नेजर के पद तक पहुंचा।

जब देश में तस्करी का धन्दा और पकड़ गया, तब शफीकुर्रहमान को कोमिला के क्षेत्र में तस्कर-विरोधी अभियान का संचालन करने का अवसर मिला। वहाँ भी उसे खूब सफलता मिली। उसकी लोकप्रियता और यश और बढ़ा।

पर तस्करी का बड़े पैमाने पर कोई भी काम तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक सम्बद्ध सरकारी अफसर और राजनेता प्रचलन रूप से उसमें शामिल न हों। तस्कर-विरोधी अभियान में सफलता का अर्थ है उन राजनेताओं की नाराजगी नोल लेना जिनके आशीर्वाद से यह असीम लाभ-

दायक धन्या दिन-दहाड़े चलता है ।

तभी एक छोटी-सी घटना घट गई । स्वरूप में छोटी, पर परिणाम में बड़ी ।

एक शारी के समारोह में बड़े-बड़े लोग शामिल हुए । मेजर शफीकुर्रहमान भी समारोह में थे ।

एक प्रमुख नेता के पुत्र ने एक लड़की को लेड़ दिया । शफीकुर्रहमान का तरण और आदर्शवादी मन इसे सहन न कर सका । उसने उस युवक को ढाँट दिया ।

पर युवक के दिमाग में तो अपने बाप के पद की गरिमा—जिसे गर्भी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा—भरी थी । उसने भी अपने साथी इकट्ठे कर लिए ।

गाजी मुस्तफा कमाल भी वहीं थे । उन्होंने शैतानी करने वाले युवक का साथ दिया, क्योंकि वह उन्हींका सुपुत्र था ।

बात बढ़ चली । बापस में हाथापाई की गौबत आ गई । कहते हैं कि गोलियों का आवान-प्रदान भी हुआ । पर किसीके हताहत होने का कोई प्रमाण नहीं ।

शिकायत पहुंची बंगबन्धु के दरबार में । वहां भी गाजी मुस्तफा कमाल हाजिर । शफीकुर्रहमान को प्रधान मंत्री के निवास पर बुलाकर माफी मांगने को कहा गया । जब उसने माफी मांगने से इन्कार कर दिया, तब कहा जाता है कि उसे जलील किया गया और खासी पिटाई भी हुई ।

इसके बाद शफीकुर्रहमान को सेना से निष्कासित कर दिया गया । यही शफीकुर्रहमान मेजर दत्तीम के नाम से विच्छात हुआ जिसने बंगला देश की तीसरी कान्ति में प्रमुख पार्ट बना किया । पर उसकी कथा बाद में ।

### छठी अफवाह

बंगबन्धु के मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्री थे—ताजुहीन अहमद । यह वही ताजुहीन थे जो मुकित-संचार के दिनों में बनी बंगला देश की अस्थायी सरकार के प्रधान मंत्री थे, मुकितवाहिनी के संचालक थे, और अपनी योग्यता, सरेपन तथा ईमानदारी के लिए विच्छात थे ।

उनका सबसे बड़ा मुण्ड—जिसे कुछ लोग दुर्घट कहना पसंद करते—  
यह था कि वे काटटर भारत-समर्थक और रूस-पक्षपाती थे, क्योंकि उन्हें इसी  
नीति में बंगला देश का उद्धार दिखाई देता था।

जब आपातकालीन स्थिति घोषित करने के बाद भी देश में हालात  
सुधरते नजर नहीं आए और अराजकता तथा महंगाई जबों की जबों विद्यमान  
रही, तब एक दिन बंगबन्धु ने मंत्रिमण्डल में यह प्रस्ताव रखा कि जातीय  
संसद (पार्लियामेंट) को भंग कर दिया जाए और प्रशासन के सारे अधिकार  
राष्ट्रपति के रूप में बंगबन्धु रखयं संभाल लें, तो इससे जनतंत्रीव प्रणाली के  
आचार्यक तकाओं के कारण प्रशासन में जो बवरोध और गिरिलता उपस्थित  
होती है, वह दूर हो जाएगी और कानूनों को क्रियान्वित करने में तेजी आ  
सकेगी।

मंत्रिमण्डल के अन्य सब साथी चुप रहे। बंगबन्धु के सामने कौन मुंह  
खोले। पर देश में दूरवामी परिणाम उपस्थित करने वाली और जनतंत्र को  
समाप्त कर तानाशाही का मार्ग प्रशस्त करने वाली इस प्रक्रिया से ताजुदीन  
सहमत नहीं हो सके।

उन्होंने बंगबन्धु से कहा—“ऐसा कौन-सा काम है जो आप स्वयं राष्ट्र-  
पति बनकर ही कर सकते हैं और प्रधान मंत्री बने रहकर नहीं कर सकते? रही  
बात पार्लियामेंट की। उसमें आपके दल का इतना अधिक बहुमत है कि आप  
जो कानून चाहें, पास करवा सकते हैं। जनता की अद्वा भी आपके प्रति असीम  
है। सारा मंत्रिमण्डल आपका अनुगत है। इस समय देश में अन्य कोई व्यक्ति  
ऐसा नहीं जो आपका प्रतिद्वन्द्वी हो। प्रतिद्वन्द्वी की बात चोड़ जन्य कोई  
नेता आपके पास भी नहीं लहरता। फिर आपको चिन्ता किस बात की  
है। आप सारे अधिकार अपने हाथ में लेकर क्या जनता के मन में यह  
भावना नहीं पैदा करेंगे कि आप डिक्टेटर बनना चाहते हैं? यह युग डिक्टे-  
टरशिय का नहीं, जनता को अपने साथ लेकर चलाने का है। डिक्टेटरों के  
स्वप्न कभी पूरे नहीं होते, इसके उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है।  
इसलिए आप इस प्रकार की बात सोचते ही क्यों हैं?”

उस समय बंगबन्धु ने इस बात को निश्चितरित ही रहने दिया। पर अगले  
दिन सबेरे ही ताजुदीन मंत्रिमण्डल से निकाल दिए गए।

इस घटना पर भारत के एक पत्रकार ने कहा था कि ताजुदीन के हठ जाने से भारत और बंगला देश के बीच का पुल टूट गया।

मैंने ऊपर जिन अफवाहों का उल्लेख किया है, वे मैंने अपनी बंगला देश की यात्रा के समय सुनी थीं। उनपर मैं भी उस समय पूरी तरह विश्वास नहीं कर सका था।

जानता हूँ कि जब इमर्जेंसी के समय जनता की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता छीन ली जाती है, तब इस प्रकार की अफवाहें कानों-कान फैलती रहती हैं। न इन अफवाहों की कहीं पुष्टि होती है, न लक्षण। पर ज्यों-ज्यों ये फैलती हैं, त्यों-त्यों एक कान से दूसरे कान तक पहुँचते-पहुँचते उनमें कुछ न कुछ नमक-मिर्च और मिल जाता है।

पर अफवाहें क्या विलकुल निराधार होती हैं?

यहीं यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि क्या उपन्यास और महाकाव्य निरे काल्पनिक होते हैं, उनका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं होता ?

तब दर्शनशास्त्री और मनोविज्ञानवेत्ता बीच में कूद पड़ेंगे और कहेंगे कि नहीं, न उपन्यास काल्पनिक होते हैं, न महाकाव्य। उपन्यासों में केवल नाम काल्पनिक हो सकते हैं, घटनाक्रम नहीं। महाकाव्यों में और इतिहास में नाम वथार्थ हो सकते हैं, पर घटनाक्रम वहाँ भी सर्वथा चिवादास्पद रहेगा। वास्तविकता यह कि मनुष्य की कल्पना भी कभी निराधार नहीं होती। जिन लोगों ने कभी आकाश में पंछी को उड़ाता देखकर आकाश में मनुष्य के उड़ने की कल्पना की थी, वह कल्पना आज के मुग में सार्वक हो गई न ! जिन लोगों ने भनुष्य हारा चन्द्रनोक की यात्रा की कल्पना की थी, क्या आज वह सत्य सिद्ध नहीं हो गई ? इनकीसबीं और बाईसबीं सदी के संसार की कल्पना जिन वैज्ञानिकों ने की है, क्या उनकी कल्पना के साकार होने के प्रमाण अभी से मिलने शुरू नहीं हो गए हैं ?

पर अफवाह न उपन्यास है, न महाकाव्य, न इतिहास।

यों सब कुछ है। क्योंकि वह सर्वथा निराधार नहीं होती। असत्ता इतना अवश्य है कि अफवाहों में जनता की कल्पना-प्रवणता और सूजन-शीलता का साकार होता है। अफवाहें और जनसुलियाँ क्या हैं—ये

जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता के उपन्यास है, महाकाव्य हैं और हति-हस हैं।

अकवाहों को आप अकवाह इसीलिए कहते हैं न कि वे किसी पुस्तक या समाचारपत्र में प्रकाशित नहीं हुए ! केवल जनता की जबान और जनता के कान ही उसके सबसे बड़े उत्पादन-संयंत्र होते हैं !

बाद के घटनाक्रम से यह तिढ़ हो गया कि उक्त अकवाहों में से कोई भी सर्वथा गलत नहीं थी।

पिछले तीस सालों से भारत महादेश के इस पूर्वतन भाग के रंगमंच पर जो नाटक चल रहा है उसमें नान्दीपाठ और सूनधार से लेकर नायक तथा प्रतिनायक तक की सभी भूमिकाओं में जिस व्यक्ति का सबसे महत्त्व-पूर्ण रोल रहा है, वह न्यूनित है करीमपुर जिले के ढांगीपाड़ा में ७ मार्च, १९२० को जन्म लेने वाला शेष मुजीब।

कियोरावस्था में ही उसमें राजनीतिक चेतना जागृत हो गई थी। शहीद मुहरावर्दी को अपना राजनीतिक गुरु मानकर उसने मुस्लिम लीग के एक उत्साही स्वयंसेवक के रूप में अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ प्रारम्भ की थीं। विचारों में सर्वथा परिवर्तन हो जाने पर भी मुजीब अपने राजनीतिक गुरु को भूले नहीं थे और उसकी सृष्टि को अक्षुण्ण रखने के लिए इन्होंने अंग्रेज देश की बाबौदोर अपने हाथ में आते ही रेसकोर्स मैदान (रमण पार्क) का नाम मुहरावर्दी पार्क रख दिया था।

हतन शहीद मुहरावर्दी का नाम सामने आते ही भारतीय राजनीति का ऐसा कौन-सा विद्यार्थी है जो कलकत्ता के हृत्याकाण्ड को भूल जाए ?

सन् ४६ की बात है। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस शासन के विरोध में 'सीधी कार्रवाई' (डावरेक्ट एक्शन) विवर मनाया था। इस दिवस के उपलक्ष्य में मुस्लिम लीगी गुण्डों ने कलकत्ता में हिंसा और घृणा का नम्नताप्त ग्राम्य प्रारम्भ कर दिया। पर लातों के भूत लातों से नहीं मानते। इसलिए चिरोधी शक्तियाँ भी तुरन्त सबेत हो गईं और मुस्लिम लीगियों को उसी जबान में जबाब मिलने लगा जिसे वे समझ सकते थे। उन्हें लगा कि अपनी साम्प्रदायिक विध्वंसक शक्ति के प्रदर्शन के लिए कलकत्ता का चुनाव सही नहीं है। वह शक्ति-प्रदर्शन लो उस स्थान पर होना चाहिए जहां मुसलमानों

का अत्यधिक बहुमत हो ।

तब उन्हें नोआखाली का ज्यान आया ।

नोआखाली की अपनी कुछ विशेषताएं थीं । चटगांव डिवीजन के इस प्रदेश में मुसलमानों की आबादी ८१ प्रतिशत थी और हिन्दुओं की केवल १६ प्रतिशत । फिर भी प्रदेश की ६४ प्रतिशत भूमि हिन्दुओं के पास थी । इसलिए उनके बिरोध में भूमिहीनों और कम भूमिवालों को आखाली से भड़काया जा सकता था । धार्मिक कठूरता इस प्रदेश में इतनी अधिक थी कि देवबन्द और आजमगढ़ के उन मदरसों में, जहाँ शुरू से ही अरबी पढ़ाकर झगरान्ध मौलिकी तैयार किए जाते हैं, इस प्रदेश के मौलिकी प्रशिक्षण पाने के लिए अच्छी संख्या में जाया करते थे । नोआखाली के मौलिकी बम्बई और मद्रास तक की मस्जिदों में इमाम बनते थे ।

मुस्लिम आबादी की सघनता का यह हाल था कि चटगांव से चार्दिपुर तक १०० मील के इलाके में 'अल्लाहो अकबर' के नारों की शूखला चलाई गई थी—एक आदमी नारा बोलकर खत्म करता कि तुरन्त कुछ दूरी पर स्थित दूसरा आदमी वही नारा लगाता, फिर तीसरा, फिर चौथा—और इस प्रकार इस सौ मील के प्रदेश के कण्ण-कण्ण को 'अल्लाहो अकबर' के नारे से शब्दशः और अक्षरशः गुंजा दिया जाता ।

मुस्लिम लीग ने इस प्रदेश को क्यों चुना—इसका एक कारण और भी था । कभी १९२०-२१ के स्वातंत्र्य-संघर्ष के दिनों में यहाँ के मुसलमानों ने खिलाफ आन्दोलन में हिस्ता लिया था और बाद में कांग्रेस का साथ देकर उन्होंने दो रायबहावुरों और एक खानबहावुर को हरा दिया था । पर १९४६ आते-आते समय बदल चुका था । बब मुस्लिम-बहुल इलाकों में सर्वत्र मुस्लिम लीग जड़ जमा चुकी थी और अंग्रेजों ने राजनीतिक विभूज की सबसे बड़ी भुजा कांग्रेस को हटाने के लिए दूसरी भुजा मुस्लिम लीग को अपने साथ मिला लिया था । और इस प्रकार दो भुजाएं मिलकर तीसरी भुजा को पछाड़ना चाहती थीं । उस समय अंग्रेज अफसर साफ़-साफ़ कहते थे—“तुम हिन्दू लोग कान्तिकारी के रूप में बग और गोली का इस्तेमाल करके, तथा सत्याग्रही के रूप में सत्य और अहिंसा की आड़ में सत्याग्रह करके, अंग्रेजों को इस देश से छोड़ना चाहते हो, इसीलिए हमने

मुस्लिम लींग को साथ लिया है। यदि तुम हमारा साथ दो तो हम मुस्लिम लींग का दामन छोड़ सकते हैं।"

कलकत्ता में 'डायरेक्ट एक्शन' की विफलता की खींच नोआखाली में निटाई गई। वहां १० अक्टूबर, ४६ को कल्पेभाष्य सुरु हुआ। पुल तोड़ दिए गए, नहरें तोड़ दी गई, सड़कें काट दी गई और डाक-तार-टेलिफोन आदि संचार-सम्बन्ध सब इस तरह भ्रंग कर दिए गए कि लगातार सात दिन तक यह प्रदेश देश के शेष भाग से विच्छिन्न रहा और संसार जान ही नहीं पाया कि वहां क्या हुआ या वहां क्या गुल लिल रहा है। मुस्लिम लींग को खुलकर सेलने का मौका देने के लिए चटगाँव डिवीजन का कमिशनर तथा अन्य अंग्रेज अफसर वहां से भाग गए। सारा प्रदेश इतने घने बनों से आच्छादित है कि दिन में भी वहां शोर मचाओ तो मुनाई न दे। रास्तों पर पहरा बिठा दिया गया कि कहीं से कोई सहायता पहुंचने न पावे।

फिस प्रकार हिन्दुओं का बलात् घर्म-परिवर्तन किया गया, मन्दिरों को भ्रष्ट किया गया, जबर्दस्ती गोमांस स्थिताया गया, पतियों के सामने वलियों का और मां-बाप के सामने बेटियों का शील हरण किया गया, कन्याओं का अपहरण किया गया, निर्भय होकर लूटा गया—यह सब ऐसी व्यथा-कथा है कि लिखते भी कलम कांपती है।

कहते हैं, उन सात दिनों में वहां पांच हजार आदमी मारे गए। जालीस हजार व्यक्ति शरणार्थी बनकर सीमा के साथ ही लगे तिपरा (त्रिपुरा) में पहुंचे और १२०० शरणार्थी रोज कलकत्ता पहुंचने लगे। यह समझ नीजिए कि सन् १९७१ में पाकिस्तानी दरिन्द्रों ने जिस प्रकार की पालिकता का पूर्वी पाकिस्तान में प्रदर्शन किया, नोआखाली में जैसे उसका पूर्व रिहर्सल हो रहा था। अन्तर इतना ही है कि एक घटना पाकिस्तान बनने के बाद की है और दूसरी पाकिस्तान बनने से ऐन पहले की।

बल्कि यों कहा जा सकता है कि नोआखाली काण्ड की नृंगसता और उसको दबाने में जपनी कदर्य असमर्थता ने ही भारतीय नेताओं को देश का विभाजन स्वीकार करने के लिए चिंता कर दिया। नोआखाली काण्ड न हुआ होता, तो कदाचित् पाकिस्तान भी न बनता।

इस काण्ड में जहां तक अंग्रेज अधिकारियों और मुस्लिम लींगी नेताओं

का हाथ था, वहीं हसन शहीद सुहरावर्दी और उनके सिपहसालारों का भी कम हाथ नहीं था। बंगाल विधानसभा के चिंधायक मुलाम सरबर हुसेन ने नौआखाली जाकर अपने उत्तेजक भाषणों से जनता को भड़काया था। उनके नाम वारंट भी जारी हुआ। पर उन्हें विरफतार नहीं किया गया। और अन्तर्रिम सरकार के मुख्यमंत्री के नाते हसन शहीद सुहरावर्दी ने इस कल्पे-आम के पूरे एक सप्ताह बाद बक्तव्य देकर इन सब शबादतियों को तसलीम तो किया, पर उपद्वारों के दमन के लिए न तो सेना भेजी, न मुद्र नौआखाली का दौरा करना मंजूर किया। दलिक बक्तव्य देकर वे अपने दिलो-दिमाल की तपिया बुझाने दार्जिंगिंग चले गए, जहां अंग्रेज गवंनर पहले से ही आराम फरमा रहा था।

रोम जल रहा था और नीरों बंसरी बजा रहा था—इसका इससे बढ़कर उदाहरण और कहां मिलेगा?

नौआखाली काण्ड में सबसे अधिक अत्याचार और अनाचार जिस प्रदेश में हुआ वह वही करीमपुर जिला था जिसे शेख मुजीब को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

इस सारे काण्ड में सुयोग्य गुरु के सुयोग्य चेले का भी कुछ हाथ था या नहीं, यह कह सकना संभव नहीं है। पर इतना सप्रमाण कहा जा सकता है कि शेख मुजीब उस समय कलकत्ता के इस्लामिया कालेज में अन्तिम वर्ष के विद्यार्थी थे और अपनी छात्रावस्था में ही वे मुस्लिम लीग की कौसिल के मेम्बर और अपने राजनीतिक गुरु के विद्यासभाजन बन चुके थे। यह भी सप्रमाण कहा जा सकता है कि १९४७ के जनमत (रिफरेण्टिंग) में शेख मुजीब ने सिलहट की जनता को अपने तूफानी आन्दोलन से इस बात के लिए तैयार किया था कि वह भारत के बजाय पाकिस्तान के पक्ष में अपनी राय दे।

राजनीतिक जनों के जीवन में इस प्रकार के अण आते रहते हैं। कभी वे हिमालय के शिल्प पर होते हैं और कभी भू-स्खलन के शिकार होकर गहरी झार्झ में। बंगला देश में नाटक के नायक के जीवन की रंगीनी इन्हीं विपरीत पठनाओं में से निखरती है। कभी कायदे-आचाम मुहम्मद अली जिन्ना भी तो कट्टर कांग्रेसी और राष्ट्रवादी थे, तो कभी शेख मुजीब भी कट्टर मुस्लिम लीगी थे। पर बाद में दोनों ने अपने स्थान आपस में बदल

लिये।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन-काल में 'ब्लैक-हूल' के नाम से अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतीयों को बदनाम करने के लिए सर्वथा मनषदन्त एक घटना गढ़ी थी। जब नेता जी सुभाष चोपड़े ने उसके विरुद्ध सत्याग्रह किया, तब शेख मुजीब भी उसमें शामिल हुए थे। शेख पर तब मुस्लिम लीग का रंग इतना गहरा था कि राष्ट्रीयता का यह रंग अधिक दिन नहीं टिक सका और इस आन्दोलन के बाद वे फिर मुस्लिम लीग के काम में जुट गए।

१९४७ में, आखिर, पाकिस्तान बन गया और उसका एक भाग पूर्वी पाकिस्तान और दूसरा पश्चिमी पाकिस्तान कहलाया।

पर पाकिस्तान बने एक साल भी नहीं गुजरा था कि पाकिस्तान का जाहू टूटने लगा।

शेख ने देख लिया कि जिस पाकिस्तान के लिए मैंने जी-जान लशाया, वह पाकिस्तान केवल उर्दूभाषी पश्चिमी पाकिस्तानियों द्वारा सियासत और हक्कमत में वयना हाकिमाना दौब बढ़ाने की हिकमत और साजिश माल था। और जब मार्च, १९४८ में कायदे आजम ने यह चोषणा की कि उर्दू पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा है और जो कोई इसका विरोध करता है, वह पाकिस्तान का दुर्घन है, तो शेख का रहा-सहा मोह भी भंग हो गया।

कायदे आजम की उस सभा में ही तारण मुजीब छाका विश्वविद्यालय के कुछ अन्य तेजस्वी छात्रों के साथ खड़ा हो गया और 'बंगला भाषा अमर रहे' का नारा तुलन्द किया।

और उसके बाद शेख को कृष्ण मन्दिर की ओर शरण मिली तो लगातार दस साल तक वह जेल के सींकचों से बाहर नहीं आ सका।

और जब जेल से छुटकर आया तो शेख ने नाटक में साइड रोल करना छोड़कर सीधे नायक की भूमिका अपना ली। पश्चिमी पाकिस्तान के आधिपत्य के विरुद्ध आन्दोलन में उसने अपने-आपको झोंक दिया। समस्त केन्द्रीय-विधान निर्माती (लैजिस्लेटिव) संस्थाओं में उसने बंगालियों के समान दर्जे की मांग की और उसने अपने सब साथियों को मुस्लिम लीग की साम्राज्यिकता से निकालकर राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर करना प्रारम्भ कर दिया।

अबामी मुस्लिम लीग का नाम भी बदलकर सिर्फ अबामी लीग रहने दिया गया।

धीरे-धीरे लेख का राजनीतिक 'स्ट्रेचर' बढ़ना चुरू हुआ। सन् १९५४ में वह प्रान्तीय विधान सभा के लिए निर्वाचित हुआ। एक साल बाद राष्ट्रीय विधान सभा (पाक पालियमेण्ट) के लिए निर्वाचित हुआ। 'ओरे बंगाल' फजलुल हक के मंत्रिमण्डल में वह व्यापार मंत्री बना और बाद में, १९५७ में उसने विधावों के चितरण में मतभेद होने के कारण पाकिस्तान के बैन्द्रीय मंत्रिमण्डल में जाने से इन्कार कर दिया।

१९६२ में उसने एक आन्दोलन चलाया जिसमें अपूरवाओं द्वारा लावे गए उस संविधान का विरोध किया जिसमें पूर्वी बंगाल की जनता को तुनियादी अधिकारों से बंचित रखा गया था। सन् १९६५ में उसने पाकिस्तान के प्रेजिडेंट के चुनाव में अवूव के मुकाबले में कुमारी फ़तिमा जिन्ना का समर्थन किया। १९६५ में भारत-पाक युद्ध के समय ही उसने पूर्वी बंगाल की स्वायत्तता का आन्दोलन छेड़ दिया। उसका कहना था—'हमारी सरकार कश्मीर में जनमत के लिए लड़ रही है। सरकार वही जनमत हमारे वहाँ भी तो कराकर देवे।'

१९६६ में उसने पूर्वी बंगाल की स्वायत्तता के लिए अपना ५ सूत्री कार्यक्रम पेश किया और अबामी लीग ने इस उद्देश की प्राप्ति के लिए जनता को तृष्णार करना प्रारम्भ कर दिया।

१९६८ में राजद्रोह का अभियोग लगाकर अग्रतल्ला घट्यंत्र काण्ड में उसे फ़ताया गया। परन्तु उसमें पाकिस्तान सरकार को मुंह की सानी पड़ी। उसके बाद लेख ने जो धूआंधार आन्दोलन छेड़ा तो वह १९६६ में अपूरवाओं को धद्युत करके ही शान्त हुआ।

१९७० के दिसम्बर के चुनावों में विजय मिलने पर जब याहूयाओं ने जनता के प्रतिनिधियों को सत्ता सौंपने से इन्कार कर दिया, तभी स्वाधीन बंगला देश के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। याहूयाओं के दरिले पूर्वी बंगाल पर टूट पड़े। उसके पहले बैल मुजीब ने मार्च, ३१ में नायकोचित अन्दाज से गुरुगंभीर गर्जना के साथ कहा था—'उनके पास बन्दूकें हैं, तोपें हैं, सारे साधन हैं। वे मुझे मार सकते हैं। परन्तु उनको यह जान लेना चाहिए कि

वे बंगल की साड़े सात करोड़ लोगों की भावना को नहीं कुचल सकते।"

याहू याक्खां ने अपनी ओर से पूर्वी पाकिस्तान को कुचलने में कसर नहीं छोड़ी। जिस बहशीपन के कारण पूर्वी बंगल के तीस लाख लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे और एक करोड़ लोग शरणार्थी बनाकर भारत की ओर धकेल दिए गए, उस बहशीपन की मिसाल दुनिया की तबारीज में ढूँढ़ने से भी मिलनी मुश्किल है।

पर दौवीं विद्यान याहू याक्खा के अनुकूल नहीं था। वे डिक्टेटर से जेल के सीखचौंमें पहुंच गए और मुजीब फाँसी के तख्ते से राजसिंहासन के तख्त पर पहुंच गए।

अब मुजीब थे और उनके सामने अपना स्वप्न था—'सोनार बांगला' कैसे बनाऊँ। बीच में कोई बाधा नहीं थी। भारत ने स्वाधीन बंगला देश के उदय के पश्चात् कई बास तक इतनी अधिक सहायता की कि कितनी रुचि और कितना सामान जा रहा है, इसका कोई हिसाब तक नहीं रखा गया। रुस ने भी सहायता में कसर नहीं छोड़ी। धीरे-धीरे अमरीका भी सहायता की थींली लिए चला आया। अन्य देशों ने भी सहायता की।

पर बंगला देश तो ऐसा अन्धकूप सावित हुआ कि उसमें जितना भी ढालो, सब गड़प।

थैलियों की ढोरियों कस गई, पर भिक्षा की झोली ज्यों की त्यों फैली रही। रेडकास के नाम से तथा अन्य संस्थाओं की मार्फत बिदेशों से आने वाली वह सब सहायता कहाँ गई? उसका क्या उपयोग हुआ?

कभी मुजीब ने निराशा के स्वर में सुन ही कहा था—“मैं अपने देश-वासियों को सब कुछ दे सकता हूँ, पर चरित्र नहीं दे सकता।”

जिस कवि ने कहा था—“यदि धन गया, तो कुछ नहीं गया। यदि स्वास्थ्य गया, तो बहुत कुछ गया। यदि चरित्र गया तो सब कुछ गया।” उसका कहना गलत नहीं था।

इतनी सहायता के बावजूद, बंगला देश में न जराजरता कम हुई, न महगाई कम हुई, न आम जनता के जीवन-स्तर में सुधार हुआ। जितनी भी समृद्धि आई, वह चन्द लोगों के चरणों की चेरी बनकर रह गई। ज्यों-ज्यों विषमता की खाई बढ़ती गई, त्यों-त्यों जन-जसन्तोष भी बढ़ता गया।

जिस बांगला देश की स्तुति में रवीन्द्रनाथ के कण्ठ से स्वर फूटा था—  
“बांगलार माटी, बांगलार जल, बांगलार वायु, बांगलार फल—पुष्प हडक,  
पुष्प हडक, पुष्प हडक !” और विश्वकवि ने जिसकी मिट्टी के लिए कहा  
था—“ओ आमार देशेर माटी, तोमार पर टेकाई नाया। सार्थक जन्म आमरा  
जन्मेछि एइ देश”—उसी बांगला देश की मिट्टी अब सोना उगलने के बजाय  
भूत, दैन्य, दारिद्र्य और असुरक्षा उगलने लगी।

भूत उगने का उदाहरण सुनना चाहते हैं ?

जयन्त चौरी करते हुए पकड़ा गया। पुलिस ने उसे इतना मारा कि  
उसके प्राण निकल गए। शब-शरीका के लिए उसका शब अस्पताल में भेज  
दिया गया। डाक्टरों ने जांच करने के बाद बताया कि वह व्यक्ति एक मर्ज़  
का शिकार था। उसी मर्ज़ के कारण उसने चौरी का अपराध किया था।

जयन्त को कौन-सा मर्ज़ था ?

वह एक शारीरिक चूर्चरत थी। उस मर्ज़ का नाम था... भूत।

कई मास से जयन्त बेकार था। खूब दीढ़-धूप करने पर भी उसे कहीं  
काम नहीं मिला। वह अपना या अपने परिवार का पेट कहीं भरता ?

अन्त में उसने एक तरकीब निकाली। वह गांव लालों के रसोईघर में से  
भात, मांड और फेंकी हुई जूठन चुराने लगा। इस कला में वह माहिर हो  
गया। पर एक दिन आधी रात को वह एक शारीर के घर में से जूठन  
चुराता हुआ पकड़ा गया। शारीर ने जयन्त को पुलिस के हवाले कर दिया।  
पुलिस लालों ने उसे इतना पीटा कि वह हवालात में ही मर गया।

बच्छा हुआ, अब वह कभी चौरी नहीं करेगा।

और ‘बांगलार माटी’ में असुरक्षा उगने की बात ?

साम्प्रदायिकता, अकाल और बाढ़ की विभीषिका से बस्त और असुरक्षा  
की भावना से चर्त लोगों का प्रवाह फिर भारत की ओर उमड़ चला।  
भारतीय दूतावास में रोज लगभग १२०० व्यक्ति भारत के प्रवेश-पत्र के  
प्रार्थनापत्र देते। मैंने इन प्रार्थियों की लम्बी लाइन स्वर्ण अपनी जांखों से भारतीय  
दूतावास में देखी है। क्या उनमें से कोई लौटकर बंगला देश आएगा ?

मह तो हुआ वैध उपाय। अवैध उपायों से कितने लोग भारत की सीमा

में घुसपैठ करते, इसका कोई हिसाब नहीं। ब्रह्मपुत्र की जाटी बर्से से भूमि-हीनों को आकर्षित करती रही है। बलगान्चल की उपत्यका में दरांग ज़िले में कितने ही लोग गुपचूप जाकर बस गए। उत्तरी कछार, नदिया और चौबीस परगना भी बंगला देश से अवैध रूप से आवृज्जन करने वालों के लिए आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। असम और खिपुरा में राजि के अन्धकार में सीमा पार करके घुस आने वालों की संख्या भी कम नहीं रही है।

मौके की नज़ारकत सभग्रन्थने वाले कुछ भ्रष्ट अफसरों ने जहां बंगला देश में साम्प्रदायिक उत्तेजना पैदा करके अल्पसंखक सम्प्रदाय में असुरक्षा की भावना पैदा की वहां वह भी प्रचारित किया कि इधर से जाने वाले लोगों के लिए भारत में निःशुल्क लंबर लोड गए हैं। फिर यही भ्रष्ट अफसर भयभीत लोगों के हितेष्वी बनकर उनके पास जाते, उन्हें सुरक्षित सीमा पार पहुंचा देने की गारंटी देकर उनसे रूपया ऐंठते। सीमा पर पहुंचने पर इनका रहा-सहा माल-मता सीमा-पुलिस छीन लेती।

कापड़ी अर्से तक भारत सरकार इस बात को नज़रन्दाज करती रही। ४०० भील तक सभी दिशाओं में फैली सीमाओं पर निगरानी भी कहां तक रखी जाती। जब शरणार्थियों की संख्या बहुत बढ़ने लगी तो भारत सरकार ने अपनी सीमा-सुरक्षा सेना (बोर्डर सिक्योरिटी फोर्स) को सावधान किया और सुरक्षा सेना ने इधर आने वाले लोगों को वापस बंगला देश की सीमा में ब्लेकेना शुरू किया।

भारत की सीमा में अवैध रूप से प्रविष्ट जिन लोगों को वापस बंगला देश जाने के लिए बाधित किया गया, उनसे बच्छी भेंट-पूजा बसूल किए जिना रक्खावाहिनी उन्हें बंगला देश में भी नहीं घुसने देती क्योंकि उनके पास न कोई पारपत्र होता, न प्रवेश-पत्र। सन् १९७५ के प्रारंभिक दो महीनों में लगभग २२,००० अवैध आवृज्जकों को बंगला देश वापस भेजा गया।

फिर भी कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि महानगरों में इन आवैध आवृज्जकों की संख्या बढ़ती चली गई। महानगरों में इसलिए कि उनके विशाल जन-समुद्र में एक बार घुस जाने के बाद फिर अलग से अवैध आवृज्जकों का पता लगाना आसान नहीं होता।

उन लोगों पर क्या बीतती होगी जो तरह-तरह की रंगीन आशाएं मन में लिए बंगला देश छोड़कर भारतभूमि में प्रवेश करते होंगे और उसके बाद भारतमाता निर्ममतापूर्वक अपने इन 'भूतपूर्व वेटो' को बापस फिर उसी नरक में धकेल देती होगी ?

इधर कुआं, उधर साईं ।

न उधर जीवन-रक्षा, न इधर जीवन-रक्षा ।

हताश-निराश, वस्त-पस्त व्यक्ति कहां जाएं, क्या करें ?

बंगला देश से समाचार आने लगे कि अनेक वेरोजगार लोग बातमृत्या कर रहे हैं ।

जब कई नव विवाहित दम्पतियों ने भी, जिन्होंने संसार के समस्त सुखों को अपनी मुट्ठी में पाने के अरमानों के साथ विवाह किया था, निराश होकर ब-सुखी सुदकुशी करती प्रारम्भ कर दी, तब जैसे इन्सानियत चीख उठी !

इसी आलम में बंगबन्धु ने २८ दिसम्बर, १९७४ को बंगला देश में आपालकालीन स्थिति घोषित की ।

पर जब उससे भी स्थिति बेकाबू रही तो बंगबन्धु ने २५ जनवरी, १९७५ को पार्लियामेंट भंग कर दी, सब राजनीतिक दल विचारित कर दिए, सब समाचारपत्रों ( दो को छोड़कर ) का प्रकाशन बन्द कर दिया, न्याय-पालिका भंग कर दी, स्वयं राष्ट्रपति बन गए और प्रशासन के सारे सूच उन्होंने अपने हाथ में ले लिए ।

नई राजनीतिक पार्टी का गठन हुआ—जिसका नाम रक्षा या बंगला देश कृषक अभियंक अवामी लीग । संसदीय जनतंत्र के स्थान पर इस प्रकार एकदलीय शासन बंगला देश में प्रारम्भ हो गया । जनतंत्र की आत्मा—अभियक्ति के स्वातंत्र्य—की हत्या कर दी गई ।

केवल दो घटे के अन्दर-अन्दर जिस तेजी से यह सब काढ़ हो गया, बंगबन्धु बंशपिता बन गए, वह भी कम आश्चर्यजनक घटना नहीं है ।

बंगला देश के रंगमंच पर जो नाटक चल रहा था, उसके एकमात्र नायक थे मुजीब । बंगबन्धु से बंशपिता बन जाने के पश्चात् नाटक का सह-नायक या प्रतिनायक भी कोई नहीं रहा ।

बव मंच पर चारों ओर मुजीब ही मुजीब । नायक के सिवाय नाटक

में और कोई पात्र भी नहीं।

तब श्रीरोदात्त नायक की अदा से शोक मुजीब ने कहा था—“अपनी जनता को भिसारियों का रास्त़ बन जाने से बचाने के लिए तथा अराजकता, और अनुगामनहीनता के समूल उच्छेवन के लिए मैंने यह दूसरी कान्ति की है।”

पहली कान्ति थी—पाकिस्तान के पंजे से मुक्ति के लिए। अब यह दूसरी कान्ति थी अराजकता से मुक्ति के लिए।

सन् ४६ से मुजीब जिस कान्ति की तैयारी कर रहे थे, वह १९७५ में आकर पूरी हुई।

बंगला देश का गत ५० वर्ष का इतिहास मुजीब से मुजीब तक का इतिहास है।

एर मुजीब के इस ऐतिहासिक नाटक का और नाटकोंय इतिहास का इतनी जल्दी अन्तिम इव उपस्थित हो जाएगा, यह किसीको कल्पना नहीं थी।

११

## पटाक्षेप

मकार संक्रान्ति के दिन जब मैं बंगला देश के चक्रव्यूह से निकलकर आया था तब रंगभंग पर नाटक की हस्पावली चल रही थी ।

सात महीने का छैश ।

१५ अगस्त, सन् १९७५

सारा भारत स्वतंत्रता-दिवस के उपलक्ष्य में हर्षोन्मत्त ।

भारत ही क्यों, जहाँ-जहाँ भी कोई भारतीय रहता है, वह अंग्रेजों की दो सौ वर्षों की गुलामी से मुक्ति के प्रतीक इस दिन को किसी पर्व से कम नहीं समक्षता । इस दिन का सूर्योदय जैसे प्रत्येक भारतीय के लिए एक नया जीवन-संदेश लेकर आता है ।

पर बंगला देश में उस दिन का सूर्योदय जीवन का नहीं, मृत्यु का संदेश लेकर आया था ।

आधी रात ।

नेपथ्य में हलचल ।

सारा बंगला देश निद्रामग्न ।

छावनी से कुछ टैक निकले और उन्होंने बंगबन्धु के घानमण्डी स्थित निवास-स्थान (रोड नं० ३२) को जाकर घेर लिया । साथ ही घेर लिया बंगभवन (राष्ट्रपति-निवास) और रेडियो स्टेशन को भी ।

बंगबन्धु के चौकीदार और पहरेदार भी कल्पे हुए ।

जीप से कुछ सैनिक अफसर निकले । उनके हाथों में आटोमैटिक रिवाल्वरें । आगे-आगे बही कप्तान—जिसकी बारद के सैनिक पिछले सप्ताह ही अन्य पहरेदारों को हटाकर वहाँ नियुक्त किए गए थे ।

गारद ने अपने कप्तान को देखते ही सलामी दी ।

पर यह क्या ? कप्तान तो जैसे किसी और ही मूड में हैं। वे अन्दर चुसते ही चले था रहे हैं। उनके ताथी सैनिक भी।

पहरेदारों को बपना कर्तव्य ध्यान बाया। उन्होंने रोका।

जिस-जिसने बाधा ढाली, वही गोली का शिकार।

पांच पहरेदारों की लाशें तब जमीन पर बिछ गईं, तब अन्य पहरेदारों ने बाधा ढालना बेकार समझकर आत्मसमर्पण कर दिया।

इस हलचल से मुजीब परिवार के सब लोग जाम गए।

आंखें मलते-मलते उन्होंने बक्त की नज़ारत को समझने का प्रयत्न किया।

शेष कमाल अपनी पत्नी सुल्ताना अहमद के साथ इसी वर्ष ढाका विश्व-विद्यालय से समाजविज्ञान में एम० ए० की परीक्षा देने वाला था, और शेष जमाल, गैर्डहस्ट (ग्रिटेन) से ग्रेजुएट होकर हाल में ही ढाका आया था। बंगबन्धु के ये दोनों जवान बेटे—कमाल और जमाल भी—जागे।

उन्होंने हमलावरों पर गोली चलाई। पर हमलावरों की गोली से कमाल और जमाल देखते-देखते देर हो गए।

बंगबन्धु ने सेना के प्रधान कार्यालय में फोन किया, पर वहाँ से कुछ भी सहायता कर सकने में असमर्थता व्यक्त की गई।

तब बंगबन्धु ने गुप्तचर विभाग के मुखिया सलीम को फोन किया। कुछ दिन पहले ही कर्नल रक्फ को हटाकर सलीम को यह पद दिया गया था, क्योंकि रक्फ पाकिस्तान का पक्षपाती था।

सलीम दौड़ा-दौड़ा आया।

बंगबन्धु के निवास-स्थान पर पहुंचते ही मारा गया।

तब बंगबन्धु, जो अब बंगपिता भी थे—जीने से उत्तरकर नीचे की तरफ आते हुए बोले—“तुम सब मुझे क्यों मारना चाहते हो ? तुम तो मेरे बच्चों के बराबर हो ?”

पर बंगपिता की यह कातर वाणी किसीके कान में पहुंचने से पहले ही ‘बच्चों’ की गोली ‘पिता’ के सीने पर पहुंच गई, और वे वहीं जीने पर लुहक गए।

इसके बाद हमलावर अपनी सून की प्याती आटोमैटिक रिवाल्वर लिए हुए शयनागार की ओर लपके। वहाँ बेगम मुजीब (जिसका नाम था—फाबिलातुनिसा, पर जो मुकितवाहिनी के संचरण के दिनों में तारा भासी के

नाम से भी विस्तार रहीं) और उनकी दोनों सचोविवाहिता पुत्रवशुएं (कमाल और जमाल की पलियां) लगनागार में ही बोली की शिकार हुईं।

साथ के कमरे में खेल मुजीब के भाई थे नातिर—ये भी अपनी बेगम के साथ मारे गए।

खेल मुजीब का सबसे छोटा लड़का था—रसेल, जिसका नामकरण बट्टेड रसेल के नाम के आधार पर किया गया था—वह अभी ही साल का बच्चा ही था। रसेल उठकर बाथरूम की तरफ भागा। पर हमलावरों के कोण का लिकार होने से नहीं बच सका।

बंधिता के पिता, खेल मुजीब के अब्बा जान, कुछ दिन पहले ही खुदा को ध्यारे हो चुके थे। अब १५ अगस्त के बाद उनके परिवार में कोई मर्द-बच्चा नहीं रहा।

मुजीब की बड़ी लड़की हसीना उस समय यूरोप में थी। वहां उसका पति अबू बैज़ानिक है। छोटी लड़की—रेहाना—उसके साथ थी। मुजीब के परिवार में जिफ़े उनकी ये दो लड़कियां ही जिन्दा बचीं। अबर ये दाका में होतीं तो……

जब मुजीब का सपरिवार इस प्रकार लोमहर्षक ढंग से बघ कर दिया गया, तब मेजर सारीफुल हक (जो मेजर दलीम के नाम से अधिक विस्तार हैं) रेडियो स्टेशन के कमरे में प्रविष्ट हुए और समय से पहले ही रेडियो बंगला देश से प्रसारण प्रारम्भ हो गया। हवा की लहरों पर तैरती हुई आवाज सुनाई दी—“मैं मेजर दलीम बोल रहा हूँ। मुजीब का स्वेच्छाचारी जासू समाप्त हो गया है। मुजीब मारे जा चुके हैं और सेना ने सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली है। खोदकर मुक्ताक अहमद बंगला देश के नवे राष्ट्रपति बने हैं। हमने उनका नेतृत्व स्वीकार कर लिया है।”

कहना चाहिए—यही या नाटक का अन्तिम दृश्य।

और फिर पटाखेप।

पर पटाखेप अभी कहाँ? अभी तो नाटक के अन्तिम दृश्य के कुछ सीन बाकी हैं।

मुजीब के घर से एक मील परे का सीन देखिए।

मुजीब के भानगे फजलुल हक मोनी का सफाया किया जा रहा था ।

बंगला देश में इस समय दो ही अस्वार बचे थे—‘बंगला देश आव्हावर’ अंग्रेजी में और ‘इतिपाक’ बंगला में, और इन दोनों के कर्ता-कर्ता मोनी—केवल मोनी । युवकों के राजनीतिक संगठन के एकमात्र नेता भी मोनी । सब राजनीतिक दलों को भेज करके जो एक नया राजनीतिक दल बना था—बंगला देश कुषक अधिक अवामी लीग—उसके नामजुद महामंती भी मोनी । उससे बढ़कर राजनीतिक खसित और किसके वास थी ?

शेख मोनी को केवल मारा ही नहीं गया, बल्कि संघीन से उसका गला काटा गया और घड़ को जामीन पर घसीटते हुए लायारिज लाल की तरह गिर्दों और चीलों की खुराक बनने के लिए छोड़ दिया गया ।

शेख मोनी की पत्नी, जिसे ६-७ महीने का गर्भ था, अपने पति की रक्षा के लिए आगे बढ़ी तो उसकी भी कमर में गोली लगी और अस्पताल के रास्ते में ही वह स्वर्ग सिधार गई ।

हाँ, शेख मोनी का छोटा भाई था—सलीम, वह अपने दो छोटे-छोटे भतीजों को लेकर आग निकला और हमलावर उसका सुराग नहीं पा सके ।

पर शेख मोनी का ससुर—अब्दुररब सरनाबत—जो मुजीब का बहनोई था, हमलावरों की खून की प्यास से नहीं बच सका । वह मुजीब के नंदिमंडल में वरिष्ठ मंत्री तो था ही, बल्कि यह भी अफवाह थी कि मुजीब उसे प्रधान मंत्री बनाने वाले हैं । उसे हमलावरों ने दूँह ही निकाला और उसे भी निमर्मतापूर्वक करत करके ही दम लिया ।

जब इधर नाटक के अन्तिम दृश्य का यह बीमत्सतम सीन चल रहा था, तभी सेना की एक दुकड़ी खोदकर मुश्ताक अहमद को रेडियो स्टेशन लाने के लिए उसके पुराने ढाका में आगा मसीह रोड स्थित मकान पर पहुँचे । वे एक टैक की छलचाया में रेडियो स्टेशन आए और लगभग ६ बजे उन्होंने राष्ट्र के नाम अपना संक्षिप्त संदेश दिया ।

नाटक के इस अन्तिम दृश्य की तैयारी इतनी सफाई से की गई थी कि खलनायकी के सम्भागियों के सिवाय और किसीको इसकी कानों-कान खबर नहीं लगी ।

टेलीफोन के तार काट दिए गए थे । तार-संचार-संबंध विच्छिन्न कर दिए

गए थे। ढाका में जितने भारतीय दूतावास के कर्मचारी थे, उन सब पर बिशेष कृपा की गई थी और इस बात का ध्यान रखा गया था कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे से सम्पर्क न कर सके। समाचार भेजने का एकमात्र साधन—टेलीफ्रिफ्टर—की लाइन बन्द कर दी गई थी।

विस दिन नाटक का रक्तधकावित अन्तिम दृश्य पटित हुआ। उस दिन भारतीय उच्चायुक्त श्री समर सेन और उसी राबड़ूत थी एन्ड्रेई फेलिन भी ढाका में नहीं थे।

मुजीब की रक्षा के लिए रक्षावाहिनी (जिसे वहां बाले राखी बाहिनी कहते हैं और जो एक अर्थ सैनिक संगठन था) कुछ हलचल कर सकती थी, लेकिन वह मुजीब की ही रुति थी और वह मुजीब के प्रति ही वकादारी की जापय लेती थी। पर इस तब्दा पलटने वाली जानित के आयोजकों ने उसका भी तुरन्त इलाज कर लिया। ढाका के उत्तर में १५ मील दूर साबर में रक्षावाहिनी के ३० हवार सैनिकों से देखते ही देखते हृषियार छीन लिए गए। उस समय साबर में इतने ही सैनिक थे—जोष सैनिक देश के अन्य स्थानों पर विस्तरे पढ़े थे। रक्षावाहिनी के डायरेक्टर जनरल कनेंल नूरदज़मां उस समय मास्को गए हुए थे और राखीवाहिनी के मुख्य सेनापति अब्दुल हुसैनखां अमरीका गए हुए थे। रक्षावाहिनी अपने गेताओं के बिना पतवार-शून्य नाव बन गई थी। ऐसी नाव पर कल्पा करना मुश्किल नहीं था।

कहा जाता है कि मेजर इलीम और मेजर नूर ने—जिन्हें एक बर्ब पहले रेडक्रास के मुखिया और संसद् सदस्य, मुजीब के मुहल्ले, बाखी गुलाम मुस्तफा से हुई कहा-मुनी के परिणामस्वरूप अपमानित करके सेना से निष्कासित कर दिया गया था—अपने चन्द जबात साथियों के सहयोग से इस प्रकार अपने अपमान का बदला ले लिया।

यथा राजाओं और राष्ट्राध्यक्षों की वही नियति होती है ? या तो सिर पर राजमुकुट होगा, नहीं तो इस प्रकार उनकी हत्या होगी ?

अब से चार बर्ब पहले जिस व्यक्ति को पाकिस्तान ने मृत्युदण्ड दिया, जिस व्यक्ति को कांसी पर लटकाने के लिए कांसी के सम्में झड़े कर दिए

एवं और जिसे स्वयं उपनी कब्र खोदने के लिए बिलत किया गया, उस समय तो वह ऐन आखिरी बजत पाकिस्तान के घबरा जाने के कारण जिन्दा बच गया, पर स्वदेश लौटने पर जिस व्यक्ति को लाल्हों लोगों ने अपने सिर-आँखों पर बिठाकर स्वागत किया था, उसको स्वयं उसीके स्वदेश-बानधारों ने निर्ममतापूर्वक मार दिया।

राष्ट्राध्यक्षों का कल हीना अनोखी घटना नहीं है। सन् १९४७ में बर्मी के प्रधानमंत्री जांगसाम और उनके सारे मंत्रिमंडल को कहल कर दिया गया था। सन् १९६१ में कांगो में पैट्रिस लुभुम्बा की हत्या कर दी गई थी। यत वर्ष चिली में उसके राष्ट्रपति की हत्या कर दी गई।

इतना ही क्यों, १९७५ की ११ फरवरी को मलायासी के कर्नल रिचर्ड रात्सीमांडवा की हत्या हुई। मार्च १३ को उत्तर मध्य अफ्रीका के छोड़ नामक प्रदेश के राष्ट्रपति एंथरार्टा तोम्बाल बेचे की हत्या हुई। २५ मार्च को सऊदी अरब के शाह फैजल की उनके भतीजे ने हत्या कर दी। और अब १५ अगस्त को बेल मुजीब का नम्बर आया।

राष्ट्राध्यक्षों की हत्या अनोखी न सही, पर जिस तरह मुजीब के साथ उसके परिवार की, अन्य रिश्तेदारों की और उसके प्रमुख समर्थकों की हत्या की गई, वह सब अनोखा जरूर है।

एक तरुण कवियित्री की कविता याद आती है :

खोलता हुआ खून  
वर्फ बन गया शिराओं में  
सिफे मुट्ठी भिजती है  
लामोश आन्दोलनों  
और सर्द खून के शहरों में  
ठहर गया है  
आदमीयत का इतिहास  
सलीब पर लटके हैं  
कहूं चेहरे  
और हर शहर के कन्धे पर  
उसकी अपनी ही लाश है

इस ठिठुरते हुए शहर में  
 यकायक वह क्या हुआ  
 कि आदमी  
 सभ्यता की  
 अन्तिम परिणति में  
 आदमी को खाने लगा है ।

बंगला देश में रहते हुए, मैंने मेजर दलीम के बारे में जो अफवाह सुनी थी, उसका सुलासा बाद में इस प्रकार हुआ :

जब मुजीब की घाँटों तक इस बात के लिए आलोचना की जाती रही कि वे भ्रष्टाचार को सहन करते हैं और अपने राजनीतिक कृपापात्र व्यक्तियों को भ्रष्टाचार की इतनी छूट देते हैं कि वे सीमावर्ती अवैध व्यापार से जितना धन बटोरना चाहें, बटोर लें, तब तस्करों और चोरबाजारियों के विहङ्ग कार्रवाई करने का फैसला किया गया । शेख ने इस काम में सेना की सहायता ली । उसी सिलसिले में मेजर दलीम को कोमिल्ला जिले में तस्कर-विरोधी कार्रवाई के लिए नियुक्त किया गया ।

दलीम और उसके साथियों ने जिन तस्करों और जमांखोरों को पकड़ा उनमें अवामी लीग के कार्बंकर्ता ही प्रमुख निकले । एक अवामी लीगी के पास तो एक लाल सफे का अवैध सामान पकड़ा गया । तस्कर-विरोधी अभियान में सेना ने अवामी लीग के कुछ संसद-सदस्यों को भी लिप्त पाया । बेगम मुस्तफा का नाम भी तभी सामने आया । बेगम का एक पत्र पकड़ा गया जिसमें उसने अपने रिसलेदारों को बताया था कि अवैध रूप से जमा किए गए सामान के जखीरे को कैसे ठिकाने लगाया जाए । कोशिश की गई कि वह सारा मामला दब जाए, पर दलीम ने यह पत्र एक प्रमुख अखबार में प्रकाशित करवा दिया । परिणामस्वरूप दो संसद-संदस्य निलम्बित किए गए । किन्तु कुछ असें बाद वह निलम्बन बापस ले लिया गया, जिससे सैन्य कर्मचारियों को लगा कि ऐसी स्थिति में हमारा तस्कर-विरोधी अभियान बेकार है, जब अपराधी बिना दण्डित हुए उल्टे सुर्खंड बने चूमते हैं । इससे सैन्य कर्मचारी नाराज हो गए ।

इधर अवामी लीग के कर्ता-घर्ताओं को लगा कि यदि इस तरह हमारे

आदसी तस्करी और जमाखोरी करते पकड़े जाते रहे, तो हम जनता में बदनाम हो जाएंगे। तुरन्त अवामी लीग का एक संकटकालीन अधिवेशन बुलाया गया और उसमें निश्चय हुआ कि किसी भी अवामी लीग के संसद्-सदस्य को या उच्च पदाधिकारी को शेष साहब की व्यक्तिगत अनुमति लिए बिना परेशान नहीं किया जाएगा।

इससे सेना के कनिष्ठ अफसर भी नाराज हो गए।

इसकी पराकाष्ठा पहुंची तब जब दलीम के एक रिप्टेदार की शादी में गाड़ी मुस्तफा के लड़के ने किसी लड़की को छेड़ दिया। गाड़ी गुलाम मुस्तफा न केवल रेडकास के मुखिया और ढाका अवामी लीग के अध्यक्ष थे, मुजीब के खास आदमी भी थे। गाड़ी के लड़के में और दलीम के रिप्टेदार में कहासुनी हुई। यात यहाँ तक बढ़ गई कि गाड़ी के परिवार को बहां से जाने के लिए कह दिया गया।

गाड़ी गुलाम मुस्तफा ने इसका बदला इस तरह लिया कि उसने कार में कुछ गुण्डे भेजकर दलीम को उस समारोह में ही पिटवाया। वे गुण्डे दलीम को उबदैस्ती घसीटकर शेष मुजीब के पर तक ले आए ताकि उसकी धूस्तता की सजा का आखिरी फैसला हो जाए।

इसके बाद जो कुछ हुआ उसके दो विरोधी विवरण प्राप्त होते हैं। एक विवरण यह है कि कनिष्ठ सैन्य अफसरों के एक गुट ने गाड़ी के भर को लूट लिया, जिससे शेष इतने कुछ ही उठे कि उन्होंने दलीम को और १५ अन्य अफसरों को अनुशासनहीनता के आरोप में कायंमुक्त कर दिया। दूसरे विवरण में लूट की घर्जा नहीं है।

मुजीब की हत्या क्या केवल कुछ कनिष्ठ सैनिक अफसरों की ही करामात थी? या क्या मेजर दलीम की प्रतिशोध-भावना ही इसमें प्रमुख कारण थी?

यह ही सकता है कि मुजीब की हत्या पर सोक प्रकट करना राजद्रोह माना गया हो, पर ऐसा भी क्या प्रतिबन्ध कि बंगबन्धु और बंगपिता के लिए सारे बंगला देश में किसीने शोक का एक शब्द भी नहीं कहा। उनके नृशंस वर पर किसीकी आख से 'एक कतरा खूं न निकला।'

सच तो यह है कि मेजर दलीम ही मुजीब के शत्रु नहीं थे, स्वयं मुजीब ही वपने सबसे बड़े शत्रु थे। नहीं तो क्या कारण है कि लोग उनके सामने

तो उन्हें 'बंगबन्धु' कहते थे, किन्तु उनकी पीठ पीछे उन्हें 'बंगजातु' कहने से बाज नहीं आते।

जिस वाद्यात्मिक स्तर की बात करते हुए धर्मशास्त्री कहते हैं : "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" (व्यक्ति स्वयं ही अपना बन्धु है और स्वयं ही अपना शत्रु है), उस स्तर की बात न भी सही, पर बंगबन्धु के बारे में यह बात राजनीतिक स्तर पर भी सही है कि वे स्वयं ही अपने सबसे बड़े शत्रु थे।

१६७३ के चुनावों में जब शेख मुजीब को अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई, तब मुजीब में आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वास पैदा हो गया। वे अपने-आपको 'एकमेवाद्वितीयम्' और 'हम च मा दीगरे नेस्त' समझने लगे। हरेक सरकारी विषय में और सब सार्वजनिक स्थानों पर मुजीब के चिन्ह लग गए। संसद् में अध्यक्ष की कुर्सी के पीछे भी मुजीब के चिन्ह। मुजीब सदा बंगला देश की जनता को 'भेड़ी जनता' कहते, जिससे जनता के प्रति उनके ममत्व के साथ-साथ उनका बहम् भी झलकता। वे सदा गर्व-पूर्वक कहते कि "मैं अपनी जनता को पहचानता हूँ, मैंने अपनी जनता को जनतंत्रीय प्रणाली प्रदान की है, नया संविधान दिया है और जनता को बोट का अधिकार प्रदान किया है। और मैं जब तक हूँ, तब तक देश में भुखमरी नहीं होने दूगा, बंगला देश में गृहकलह नहीं होने दूगा।" वे अपने व्यक्तित्व को जनता के सब वर्गों को जोड़ने वाली कढ़ी के रूप में मानते थे। इस शेखी के कारण उन्हें अपने पांचों के नीचे से खिसकती जमीन नजर नहीं आई।

नजर आती भी कैसे ? वे डिक्टेटरों की तरह खुशामदियों से और राजाओं की तरह दरबारियों से घिरे रहते थे, जिनका काम सदा जी-दूजूरी करना था। इसलिए सही स्थिति कभी उनके सामने नहीं आती। जब राजनीतिक हृत्याएं सीमा पार कर गईं और साम्प्रदायिक हिंसा प्रशासन के लिए जुनौती बन गईं, जब 'मुस्लिम बंगला' का आन्दोलन जोर पकड़ता गया तथा 'अलैंक दिसम्बर' के नारे लगने लगे, तब भी मुजीब उन्हें मुद्दों-मर शरारती तत्त्वों की करामत कहकर उनकी उपेक्षा करते रहे। एक बार विदेशी पत्रकारों ने जब स्थिति की विवरता की ओर उनका ध्यान खींचा तब उन्होंने

गवं के साथ कहा था—‘मैं जानता हूँ कि कब क्या करना चाहिए। चिन्ता की कोई उस्तुत नहीं है।’

पर ‘चिन्ता की उस्तुत’ न मानते हुए भी उन्हें चिन्ता तो करनी ही पड़ी जब अवामी लोग के सदस्यों की हत्या और अराजकता को रोकने के लिए उन्हें दिसम्बर, ७४ में इमर्जेंसी लानूँ करने को बाध्य होना पड़ा।

उसके एक मास बाद २५ जनवरी को उन्होंने एकदलीय शासन की स्थापना करके स्वयं राष्ट्रपति बनकर न्यायपालिका और कार्यपालिका के सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिए। पर न कुप्रशासन हटा, न अष्टाचार।

तब अप्रैल में उन्होंने १०० सप्ते के नोट का विमुद्रीकरण किया, टके का अवमूल्यन किया, बड़े उत्तोगों का राष्ट्रीयकरण किया, पर इससे न महंगाई दूर हुई, न अर्थव्यवस्था सुधरी। अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने के मूल में या भ्रष्टाचार, और अष्टाचार करने वाले थे उनके शासनासृद दल के ही लोग, या उनके अपने रिशेवार। जब उनके अपने ही लोग भ्रष्टाचार में आपादमस्तक लिप्त थे, तब ये के सामने सच्चाई के से प्रकट होती, कौन प्रकट करता ?

इसके अलावा येथे ने सशस्त्र सेनाओं की उपेक्षा कर दी। बंगला देश की बाठ रेजिमेण्टों के लोग सेना में शामिल थे—जिनमें से अधिकांश पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षित थे। इनमें से बहुत-से मुकियासृद में भी शामिल थे। उनमें अपने निजी रागद्वेष भी थे और निहित स्वार्थ भी थे, पर उनकी इतनी अधिक उपेक्षा की गई कि नवीन बंगला देश के उदय का और स्वाधीनता-प्राप्ति का उनका सारा उत्ताह ही जाता रहा। सेना को और अधिक नियन्त्रित करना ए रखने के लिए तथा उसके मुकाबले के लिए मुजीब ने जातीय रक्षावाहिनी के नाम से अपना निजी अर्ध-सैनिक संघठन स्थापित कर लिया। यद्यपि सेना की संख्या के मुकाबले में रक्षावाहिनी की संख्या बहुत जोड़ी भी पर जब नागरिक प्रदर्शनों के दमन के लिए उसका प्रयोग किया जाने लगा तो रक्षावाहिनी भी जनता में अप्रिय हो गई।

१० जनवरी को जब मुजीब फरीदपुर में भाषण देने जा रहे थे, तब मैंने देखा कि रक्षावाहिनी के बन्दूकधारी सैनिकों ने ढाका से फरीदपुर तक लम्बी सड़क को पूरी तौर से घेरकर अब्य सब यातायात बन्द कर दिया

था । यह सब मुझीब की रक्षा के लिए था, या ऐसा तथा पुलिस के प्रति मुझीब की शंका का शोतक था ?

किसी नेता के बाहर निकलने पर सामान्य पुलिस के बदले बन्दूकधारी सैनिकों का पहरा भेरे लिए नहीं बात थी । यह इस बात की भी निशानी थी कि मुझीब दिन-प्रतिविन जनता से दूर होते जा रहे हैं ।

फिर शेष के निकटवर्ती और परामर्शदाता कौन थे ? अबामी लीग के वे कार्यकर्ता जो पाकिस्तानी पिण्डाचों के कुल्मों की चमकी में पिसने के लिए चिरीह जनता को परमात्मा की दया पर छोड़कर, अपनी जान बचाने के लिए भारत की भारण में भाव गए थे । उस समय, संघर्ष की तो बात ही क्या, उन्होंने जनता की रक्षा के लिए भी कुछ नहीं किया । और जब बंगला देश आजाद हो गया तो शासन की बागड़ों और संभालने के लिए वे आ घमके, उनकी तुलना भारत के उन लोगों से की जा सकती है जो अंग्रेजों के जामने में तो अंग्रेजों के पिट्ठू रहे और भारत की आजादी के बाद शासनास्त्र दल में शामिल होकर फिर वही सरकारी पिट्ठू का अपना पुस्तीनी पेत्रा अपनाकर चैन की छानने लगे ।

—और मुसितवाहिनी के वे युवक जिन्होंने अपने सिर पर कफन बांधकर और जान हृष्टेली पर रखकर धूप, वर्षा तथा प्राकृतिक प्रकोपों की परवाह किए दिना, चिंथडों में लिपटे-लिपटे ही छापामार युद्ध करके, पाकिस्तान के घन-लोलूप, रूप-लोलूप और रक्त-लोलूप नर-पिण्डाचों का जीता हराम कर दिया था—वे बंगला देश के तरुण और तरुणियां नेतृत्व की आशा से बंगवन्धु की ओर निहारते रहे, पर बंगवन्धु ने उनकी ओर नजर भी नहीं उठाई । उन्हें किसीने नहीं पूछा । बंगवन्धु अबामी लीग के दरबारियों से ही पिरे रहे ।

मुसितवाहिनी के उन उत्ताही कार्यकर्ताओं में से बहुत-से भीस मांगने पर मजबूर हो गए, कुछ ने बेकारी से तंग आकर आत्महत्या कर ली, कुछ की लाश को दफन करने के लिए कफन भी नहीं मिला । जो बच गए, वे अन्य राजनीतिक दलों के गुप्त संघठनों में शामिल हो गए ।

ऐसी हालत में बंगवन्धु ही बंगवन्धु नहीं थे तो और कौन था ?

X

X

X

बंगवन्धु की हत्या का जघन्य कृत्य जिस अकस्मिकता से किया गया, उसके कारण पहले तो जनता समझ नहीं पाई कि यह सब क्या हो गया, क्यों हो गया। फिर जब एक-दो दिन बाद जनता कुछ समझ पाई, तब तक आपात का वेग मंदा पड़ चुका था। फिर भी यह सत्य है कि इस हत्याकाण्ड पर बंगला देश में एक पत्ता भी नहीं हिला।

पर लोग आपस में यह बहुर पुछने लगे कि बिद्रोहियों ने नी साल के रसेल को क्यों मारा? क्यों मारा उनकी वेगम को, उनकी उन पुत्र-चुन्हों को जिनका विवाह हुए अभी एक महीना भी नहीं हुआ था?

सायद इसका उत्तर इस्लाम के इतिहास में दूँड़ना पड़ेगा।

सत्ता के साथ हत्या, लूट, बलात्कार और आगजनी इस्लाम के इतिहास में इस प्रकार ओतप्रोत है कि उसमें विवेक के लिए कहीं कोई स्थान नहीं।

महमूद गजनवी ने अपने भाई को आजन्म केंद्र में रखकर गजनी की गद्दी छीनी थी। उसके बाद गजनवी के बेटे महमूद ने अपने भाप को अन्धा करके जेल में ढाल दिया और गद्दी हथिया ली।

सन् ११८४ ई० में मुहम्मद औरी ने खुस्ल मलिक को और उसके पुत्र को गिरफतार करके उनकी हत्या कर दी।

सन् १२६६ में बलात्दीन खिलजी ने अपने चाचा बलालूदीन खिलजी और उसके सब समर्थकों की हत्या कर दी। इसी बलात्दीन खिलजी ने अपने दो भानजों—उमरखां और मंगूखां की आंखें निकाल लीं और हीसरे भानजे अकातखां का सिर काट डाला और उसके सब साथियों की खाल सीधे ली।

मलिक काफूर ने दो शाहजादों—खिजरखां और यादीखां—की जेल में आंखें निकलवा लीं। उसके बाद मुवारक ने मलिक काफूर को ही मार डाला और अपने तीन भाइयों—खिजरखां, यादीखां और उमरखां को भी मार डाला तथा अपने श्वसुर को भी कहल कर दिया। इसी परम्परा को बाते बढ़ाते हुए खुस्लखां ने मुवारक को मार दिया और शाही मलिक ने खुस्ल खां को मार दिया।

सन् १३२० में मुहम्मद तुगलक ने अपने भानजे बहाउदीन गशतास्प को जिन्दा जला दिया और उसका मास पकाकर सारे परिवार को परोसा।

शेखजानी को जानबरों की तरह सोहे के पिजरे में बन्द करके उसकी हत्या कर दी ।

१५६४ में हुमायूं ने अपने भाई कामरान को बन्दा कर दिया और कामरान के एकमात्र पुत्र की हत्या कर दी ।

शाहजहाँ ने अपने बाप जहाँगीर के विरुद्ध मुद्द किया और उसे बन्दी बना लिया । शाहजहाँ ने अपने भाइयों—दावर बख्ता, परवेज और शहरयार को तथा अपने भानजों—ताहमुरा और होशंग—को परलोक भेज दिया ।

उसके बाद द जून, १६५८ ई० को औरंगजेब ने अपने बाप शाहजहाँ को ही गिरफ्तार करके आगरे किले में बन्दी बना दिया । १६५९ में औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दारा शिकोह की हत्या कर दी और सन् १६६१ में अपने छोटे भाई मुराद की न्यायिकर में हत्या कर दी ।

मैं यही नहीं कहता कि इस्लाम का यह सही रूप है । निःसन्देह यह विकृत रूप है । इस विकृति में मध्य-काल की सामन्तयुगीन प्रवृत्तियों का भी योग है । पर उसके इतिहास में इस प्रकार की अविवेकपूर्ण हत्याओं की परम्परा इतनी अधिक रही है कि उस इतिहास से परिचित किसी भी व्यक्ति को बंगबन्धु की इस प्रकार निर्मम हत्या पर आश्चर्य नहीं होगा ।

शेख मुजीब की इस प्रकार हत्या को जब पाकिस्तान ने 'इस्लामी कानिक' कहकर सम्बोधित किया, तब शायद उसकी बाजी में इस्लाम का यही इतिहास बोल रहा था ।

तो क्या इस हत्याकाण्ड में पाकिस्तान का भी कोई हाथ था ?

पाकिस्तान जिस प्रकार खुशी से फूलकर कुप्पा हो चया, उससे यही आभास होता है कि उसे इस साजिश का कुछ न कुछ पूर्वाभास रहा होगा । पाकिस्तान ने २४ घण्टे के अन्दर ५०,००० टन चावल, १०० लाख गज लट्ठा और ५० लाख गज महीन सूती कपड़ा बंगला देश भेजने की घोषणा कर दी । बंगला देश की नई सरकार को तुरन्त मान्यता दे दी और सब मुस्लिम देशों से अपील की कि वे भी बंगला देश की नई सरकार को मान्यता दे दें ।

इस सबसे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि पाकिस्तान को कुछ न कुछ जानकारी थी ।

पाकिस्तानी पत्रों में मुस्लिम लीग के नवाब स्वाजा खैरुद्दीन और थी महमूद अली जैसे नेताओं के बयान काफी बढ़ा-बढ़ाकर प्रकाशित किए गए। खैरुद्दीन को पूर्वी पाकिस्तान के स्वातंत्र्य-संघर्ष का हीरो बताया गया और रेडियो पाकिस्तान से उनका बहु लम्बा बयान प्रसारित किया गया कि बंगला देश में इस्लाम-समर्थक तत्त्वों द्वारा मुजीब का तस्ता पलटने की भविध्यवाणी उन्होंने पहले ही कर दी थी। खैरुद्दीन और महमूद अली ढाका-काष्ठ के एक दिन बाब जनाब भूट्टो से मिले थे और अपनी पेशीनगोई के सफल होने की उनसे बधाई ली थी। पाकिस्तानी पत्रों में मुजीब के बारे में कहा जा रहा था कि जिस व्यक्ति ने पाकिस्तान को तोड़ने की कोशिश की, उसका यही हश्श होना चाहिए था। रेडियो पाकिस्तान ने यहाँ तक कहा था कि शेख काफिरों के हाथ की कठपुतली बन गया था, उसने पाकिस्तान के राष्ट्रीय आनंदोलन से गदारी की थी, इसलिए अल्ला ने उसके पारों का बदला दे दिया।

पाकिस्तान के सरकारी सूत्रों ने जनता में अपनी साख बनाए रखने के लिए वह भी कहा कि भूट्टो ने खेल मुजीब के डिक्टेटराना व्यक्तित्व को कभी महत्व नहीं दिया, वे खेल मुजीब की सरकार को और बंगला देश की जनता को हमेशा अलग-अलग मानते रहे, और अब बंगला देश में जो कुछ हुआ वह सब पाकिस्तान की दूरदर्शितापूर्ण नीति का ही परिणाम है।

पाकिस्तान ने बंगला देश को पुनः 'पूर्वी पाकिस्तान' कहना शुरू कर दिया, यह घोषणा कर दी कि पूर्वी पाकिस्तान पर कोई भी हमला पाकिस्तान पर हमला समझा जाएगा। उसने मुस्लिम देशों से अपील की कि वे सब मिलकर पूर्वी पाकिस्तान के आन्तरिक मामलों में बाहरी हस्तक्षेप के बिरुद्ध गारंटी दें। पाकिस्तान यह कहने से भी बाज नहीं आया कि इस इस्लामी क्रान्ति को समाप्त करने के लिए भारत पूर्वी पाकिस्तान पर हमला करने वाला है।

पाकिस्तान की इस सब उछलकूद का कारण यह था कि बंगला देश के रेडियो ने बंगला देश को 'पीपल्स रिपब्लिक' कहने के बजाय 'इस्लामिक रिपब्लिक' कहना शुरू कर दिया था। रेडियो से रवीन्द्र संगीत और गीतों का पाठ बन्द करके उनके स्थान पर प्रतिदिन कुरान का पाठ प्रारम्भ कर दिया था और 'जय बांगला' के बजाय 'बंगला देश जिन्दाबाद' कहना प्रारम्भ

कर दिया था ।

पाकिस्तान के प्रसिद्ध स्तम्भ लेखक एच० के० बर्की ने लिखा था—“इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अब भारत की ओर राहट खत्म हो चुकी है, और बंगला देश ने मुस्लिम राज्य के रूप में वपना पृथक् स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रकट करके लाहौर के १९४० बाले प्रस्ताव को (जिसमें मुस्लिम-बहुल दो राज्यों की व्यवस्था थी) कावम रखा है ।” कुछ लोगों ने यह भी कहना शुरू किया कि अब बंगला देश को पुनः पाकिस्तान में मिलने की पहल पाकिस्तान को ही करनी चाहिए, और इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि फिर कभी वह भारत के निकट न जाने पावे—उससे सदा के लिए दूर हो जावे ।

बंगला देश के इस्लामिक गणराज्य घोषित होने का अर्थ यह होता कि उसने धर्मनिरपेक्षता को तिलोजलि दे दी है, जबकि पाकिस्तान के अस्तित्व का सबसे बड़ा आधार यही है । द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर ही तो पाकिस्तान का निर्माण हुआ था और पाकिस्तान आज तक धार्मिक अस-हिष्पता और धूमा के जल से तथा बिदेशी साम्राज्यवादियों की बाहुदी खाद से इस दो कोभी नज़रिये के दरखत को पाल-पोस्कर बढ़ा करता रहा है ।

पर पाकिस्तान यह नहीं समझ पाया कि व्यक्ति-विशेष की सत्कर्मों के आधार पर राज्यों की नीतियों का निर्धारण नहीं होता । नीतियों बनती हैं सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक परम्पराओं के आधार पर, अर्थ-व्यवस्था के तकाऊ से ।

उसीका यह परिणाम था कि जब प्रयम और आकस्मिक आघात का झटका दूट गया, तब बंगला देश के नव राष्ट्रपति ने इन सब तकाऊओं को महसूस करते हुए बंगला देश को ‘इस्लामिक गणराज्य’ के बजाय ‘लोक गणराज्य’ ही माना और सत्ता संभालने के कुछ ही दिनों बाद घोषणा की कि बंगला देश धर्मनिरपेक्ष गणराज्य रहेगा और पूर्ववर्ती सरकार की तरह नई सरकार भी लोकतन्त्र, समाजवाद और राष्ट्रवाद को अपनी राजनीति का आधार मानकर चलेगी । ये चारों वक़ी स्तम्भ हैं जिनके ऊपर सोनार बंगला की इमारत बढ़ी करने का मुकीब ने स्वप्न लिया था ।

बंगला देश के रेडियो से पुनः रवीन्द्र संघीत शुरू हो गया, गीता-पाठ भी शुरू हो गया और दशहरे के अवसर पर दुर्घटिजा की दो दिन की छुट्टी भी हुई। पाकिस्तान की सारी उचलकूद व्यवस्था हो गई—जगहंसाई हुई, सो बलग।

बंगला देश के नये राष्ट्रपति खोदकर मुस्लिम अहमद के संबंध में महाराष्ट्र के एक समाचारपत्र ने लिखा था कि वे नागपुर के रहने वाले हैं। उनके पूर्वज खानदेश के थे, इसलिए वे खानकर कहलाते हैं। 'खानकर' शब्द बाद में विश्वासकर खोणकर, खण्डकर, खाणकर और खोदकर आदि न जाने क्या-क्या बन गया। वे १९४७ में पूर्वी पाकिस्तान चले गए और वहाँ में अभी तक वे मराठी बोलते हैं। उनके भाई एयर मार्शल हैं। दोनों भाई तो आपस में सदा मराठी में ही बातचीत करते हैं।

कभी महाराष्ट्र का सम्पर्क भारत के इस भाग से रहा है और मराठा सैनिक भी यहाँ अच्छी संख्या में रहते रहे हैं, यह ठीक है। पर उक्त तथ्य की कहीं और से पुष्ट नहीं हो सकी। इतना सबने ल्लीकार किया है कि श्री खोदकर ने १९४२ के 'अंग्रेजो ! भारत छोड़ो' आन्दोलन में जमकर भाग लिया था। बंगला देश के मुकित-संघर्ष में भी उनका योग था और प्रवासी सरकार में वे विदेश मंत्री बनाए गए थे। मुनीब के मंत्रिमण्डल में वे शामिल थे और बाणिज्य-व्यापार मंत्रालय उन्हींके अधीन था। मुकित-संघर्ष के दिनों में वे संयुक्त राष्ट्र संघ में जाकर बंगला देश का पक्ष रखना चाहते थे, पर नहीं जा सके। उनके बारे में पाकिस्तान-व्यापारी होने की बात भी कही जाती है।

अपने शासन के ५० दिन पूरे होने पर उन्होंने रमजान के आसिरी शुक्रवार को 'लैलातुल कद' के अवसर पर राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए पुनः अनतंत्रीय अधिकारों की स्थापना का वायदा किया। उन्होंने घोषणा की कि १५ अगस्त, १९७६ को, अर्थात् इस नवीन राज्य क्यान्ति के ठीक एक बर्व बाद, राजनीतिक दलों पर से प्रतिबन्ध हट जाएगा, वे अपनी राजनीतिक नतिविधियां पुनः शुरू कर सकेंगे। २८ फरवरी, १९७७ को नवे चुनाव करनाने की घोषणा कर दी गई। इसके साथ ही जनता को

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए उन्होंने यह भी विषयों की कि समाचारपत्रों पर से सरकार का स्वामित्व समाप्त कर दिया जाएगा, क्योंकि सरकार का स्वामित्व होने पर समाचारपत्रों की आजादी की बात व्यर्थ हो जाती है। परन्तु उन्होंने यह चेतावनी भी दी है कि इस आजादी के नाम से अनुशासनहीनता और अव्यवस्था नहीं चलने वी जाएगी।

यह वही स्वर था जो इमर्जेंसी लागू होने के बाद से भारत सरकार का स्वर है। वही अनुशासन-पर्व बाली चेतावनी।

—और मुझे निश्चय है कि भारत में जो कुछ होगा, उसकी छाप बंगलादेश पर और बंगला देश की छाप भारत पर पड़े बिना नहीं रहेगी। यह नियति का विधान ही नहीं, स्वाभाविक भौगोलिक तथ्य है।

आखिर भारत ने मुजीब का समर्थन क्यों किया था? इसीलिए कि वे घर्मनिश्चेतावनी के प्रतीक थे। भारत ने पाकिस्तान का अस्तित्व तो अपने हृदय पर पत्थर रखकर स्वीकार कर लिया था, पर साम्प्रदायिकता को वह किसी भी कीमत पर स्वीकार करने को तैयार नहीं था। जब पाकिस्तान के ही एक भाग में साम्प्रदायिकता-विरोधी स्वर उभरने लगा तो भारत को प्रसन्नता होनी ही थी।

स्वतन्त्र बंगला देश में दुर्गापूजा और रघुनंद्र संबीत को आदर का स्थान मिला और दुर्गापूजा के समारोह में ढाका विश्वविद्यालय के प्राप्त्यापक, छात्र तथा फिल्म कलाकार भी शामिल हुए, तो भारत को पहले अपने कानों पर चिश्वास नहीं हुआ, किर पीछे वह इसे सर्वथा स्वाभाविक मानकर बाष्पवास्त हो गया। मुजीब के उदय से विधानसभा के समय का दुःस्वप्न भव्य हो गया। भारत ने समझा कि अपने इस पड़ोसी के साथ तो जब शान्ति और मैत्रीपूर्वक रहा जा सकेगा। भारत की जनता वही तो चाहती थी।

बंगला देश का भविष्यत क्या होगा यह इस बात पर निर्भर है कि वह घर्मनिश्चेतावनी और साम्प्रदायिकता में से किसे अपनाता है।

विश्व के विशेषज्ञों का कहना है कि यदि भारत और बंगला देश सम्मिलित रूप से प्रयत्न करें, तो गंगा और ब्रह्मपुत्र के मैदान मिलकर युध्यना अवाज पैदा कर सकते हैं। साधान की मूल समस्या हल होने पर इस समग्र भूखण्ड को अन्य दृष्टियों से भी आत्मनिर्भर बनाने में सहारा लगेगा।

बंगलान्धु ने शलतियां की होंगी, पर इससे कौन इन्कार कर सकता है कि उन्होंने सच्चे हृदय से बंगला देश को प्यार किया था और उसे 'होनार बंगला' बनाने का स्वप्न लिया था ।

इस तथाकथित राज्यकान्ति के दौरान हुए हृत्याकाण्ड से बंगला देश के रंगमंच पर दह नाटक समाप्त हो गया जो उत्तरभारतीय साल पहले रंगमंच पर मुजीब के पदार्पण से प्रारम्भ हुआ था ।

एक नाटक का पटाखेप हो गया ।

दूसरा नाटक शुरू हो गया ।

## लपटों का घेरा

१५ अगस्त, १९७५ को धानबद्धी में बंगबन्धु के निवासस्थान पर सेना के कुछ असन्तुष्ट कमिष्ट अफसर खुन की होली खेल चुके। उसी १५ अगस्त को प्रातः १० बजे बंगबन्धु दाका विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधित करने के लिए जाने जाले थे। उत्तर देश के भावी कर्णधार होते हैं। छात्रों के सहयोग से ही बंगबन्धु ने कायदे आजम स्वर्गीय मुहम्मद अली जिन्ना की सभा में 'बंगला भाषा अभर रहे' का नारा लगाकर पाकिस्तान के विद्व विद्रोह का झंडा पहली बार चुलंद किया था। बंगला देश की स्वाधीनता के संघर्ष में भी छात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी और मुकितवाहिनी का तो जैसे दारोमदार ही छात्रों पर था।

शेष मुजीबुर्रहमान ने जब से बंगला देश के शासन की बागड़ोर संभाली थी तब से अपनी इच्छा व्यस्तताओं की बजह से वे छात्रों की इस युवा-शक्ति को भूले-से रुए थे। वे शायद सोचते थे कि राजनीतिज्ञ और सेना दोनों मिलकर राष्ट्र का शासन चला लेंगे। पर बंगला देश में बंगबन्धु राजनीतिज्ञों और सैन्य अधिकारियों की आपसी होड़, परस्पर दोषारोपण, महत्वाकांशों का विस्फोट, भ्रष्टाचार—और परिणामतः प्रशासन और कानून-व्यवस्था की निष्कलता देख चुके थे।

इसीलिए शायद उन्हें फिर छात्रों की याद आई थी। शायद उन्हींके सहयोग से वे 'सोनार बंगला' के निर्माण की कोई नई योजना भन ही मन सोच रहे हों। उनके आवमन के समाचार से छात्र भी बहुत उत्साहित थे। शायद छात्रों के मन में भी अपने देश के राजनीतिज्ञों और सैन्य अधिकारियों को आपसी प्रतिदंडिता के कारण राष्ट्र के भविष्य के प्रति वैसी ही क्षोभपूर्ण आशंका थी और वे भी बंगबन्धु के नेतृत्व में किसी नई दिशा की सोज में थे।

सूर्योदय से पहले ही धानमण्डी में बंगबन्धु और उनके परिवार पर दमावन गोलियों की वर्षा की आवाज जब आसपास पहुँची, तब जनता की पहली प्रतिक्रिया यही थी कि छात्रशण ही बंगबन्धु के आगमन की खुशी में पटाके शीर आतिशबाजी छोड़ रहे हैं।

दूसरी प्रतिक्रिया यह थी कि १५ अगस्त भारत का विदेशी दासता से मुक्ति का पर्व है, इसलिए हो न हो, भारतीय दूतावास के कमंचारी सबैदे से ही पटाके छोड़कर अपना आल्हाव प्रकट कर रहे हैं।

पर इनमें से कोई भी बात सही नहीं थी।

स्वर्यभू लेता भेजर दलोभ ने बंगला देश के रेडियो से पहले वह घोषणा की कि बंगबन्धु को गिरफ्तार कर लिया गया है। बाद में कुछ घंटे बाद घोषणा की कि बंगबन्धु मारे जा चुके हैं।

सोती हुई जनता अपनी ओसे मलती-मलती उठी। तब तक मंच पर पट-परिवर्तन हो चुका था। नये नायक और नये पात्र मंथ पर कब्जा जमाए अपने अभिनय की बानी जनता को दिखाने के लिए सन्नद्ध थे। प्रेक्षक अभी सन्नद्ध नहीं थे। प्रेक्षागृह भी खाली था। पर मंच पर नाटक प्रारम्भ हो गया था।

जनता समझ ही नहीं पाई कि रातों-रात वह क्या हो गया।

और जब तक जनता संभली तब तक एक के बाद एक कई दृश्य मंच पर गुजर चुके थे। कहानी आगे बढ़ चुकी थी।

बंगला देश की आजादी कुछ देशों को नहीं पची। रह-रहकर उनके पेट में पीड़ा होती थी कि हमारी इच्छा के विस्तर यह सब कैसे हो गया। जिन सांशालिकवादियों ने भारत को कमज़ोर करने के लिए देश का विभाजन किया था और अपने स्वार्यों की पूर्ति के लिए पाकिस्तान का निर्माण किया था, वे पाकिस्तान का टूटना कैसे बर्दाश्त कर सकते थे? उन्हें भारत का विषट्ठन तो मंज़ूर था, पर पाकिस्तान का विषट्ठन नहीं।

'उसकी इच्छा के बिना खिला न कोई कूल' की भविमा से सारे संसार को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का स्वन देखने वाला अमरीका और सारे एशिया को अपने वर्चस्व के अधीन रखने का रवाब देखने वाला चीन, तथा भारत-चिंगौप से जनमा और पला-पुसा पाकिस्तान न बंगला देश के

बम्बुदय को पसन्द करते थे, न लेक मुजीबुर्रहमान के भारत और सोवियत संघ के साथ भैंशीभाव को ।

कभी फ़ील्डमालैं अयूब खां ने अमरीका में अमरीकावासियों को सम्बोधित करते हुए छाती फुलाकर कहा था—“जब समझ एविया में कम्पुनिजम का मुकाबला करने के लिए तुम्हें कहीं पांच रखने को एक इंच जमीन भी नहीं मिलेगी, तब तुम पाकिस्तान के महत्व को समझोगे जो कम्पुनिजम से लोहा नेने के लिए तुम्हारे साथ न केवल कन्धे से कन्धा भिजाकर खड़ा होगा बल्कि सारे पाकिस्तान को तुम्हारे लिए सैनिक छावनी बना देगा ।” इसी कम्पुनिजम के विरोध की खातिर अयूबखां अमरीका से भारी संख्या में हथियारों की लौटात पाते रहे ।

इसके बलावा कभी माझे की सरकार अपने यहां के बच्चों के हाथों में खिलौने वाली बन्दूक देकर सामने अमरीकी राष्ट्रपति का पुलला रखकर उस पर गोली दाढ़ने को कहा करती थी और इस प्रकार बच्चों की नियानेवाकी का अभ्यास कराया करती थी ।

अमरीका सारे संसार में लोकतंत्र का अलम्बरदार बनता है, पर पाकिस्तान के तानाशाहों का आंख बन्दकर सदा समर्थन करता रहा है । एक तरफ बन्तराष्ट्रीय राजनीति में कम्पुनिस्ट-विरोधी गुट का सरताज बनता है, पर चीन से प्रणय की नित नई धीरें बढ़ाने का सिलसिला जारी है । क्या चीन, अमरीका और पाकिस्तान की दोस्ती किसी राजनीतिक सिद्धान्त या नैतिकता पर आधारित है ? जहां तक राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रश्न है, ऐ तीनों देश तीन ध्रुओं की दूरी पर विचारान हैं । पर इन तीनों की दोस्ती बरकरार है । ‘चोर-चोर मौसेरे भाई’ का इससे बच्चा उवाहरण और क्या हो सकता है !

यही तीनों देश भिलकर बंगला देश में किसी रूप में चढ़बड़ी करवाने का निरन्तर प्रयत्न करते रहे । बंगला देश की आजादी से इन्हीं तीनों की नींद हराम हुई थी । हाल में ही अमरीकी गुप्तचर विभाग (सी० आई० ए०) के कारनामों का विस तरह भंडाफोड़ हो रहा है, उससे इसी बात की पुष्टि होती है कि अमरीकी जामूस राष्ट्राध्यक्षों की हत्या करवाने में राजनीतिकता के किसी भी स्तर तक जा सकते हैं ।

इसके अलावा, अर्थविकसित देशों में अक्सर होता यह है कि साधनों की तो कमी होती है, पर लोगों की आकांक्षाएं बहुत बढ़ जाती हैं। सभी लोग कोशिश करते हैं कि अधिक से अधिक साधन उन्हींके हाथ में आ जाएं। बंगला देश के राजनीतिज्ञों में और सैन्य अधिकारियों में इन साधनों को हस्त-गत करने की होड़ लग गई। राजनीतिज्ञ लोग ऊचे से ऊचे स्थान पर पहुंचने के लिए सैन्य अधिकारियों की सहायता लेने लगे और सैन्य अधिकारी उच्च पदों पर पहुंचने के लिए राजनीतिज्ञों की सहायता लेने लगे।

ऐसे समय अष्टाचार को खुलकर खेलने का मौका मिलता ही है। मखे-दार बात यह है कि राजनीतिक लोग सैनिक अधिकारियों को भ्रष्ट बताते और सैनिक अधिकारी राजनीतिज्ञों को भ्रष्ट बताते। बात शायद दोनों बोर सही थी। पर असली अष्टाचारी कौन है, यह कौन पता लगाए? शेष मुजीब मुजीब दुविधा में थे। वे राजनीतिज्ञों और सैन्य अधिकारियों में से किसीको भी अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। इसी दुविधा में संचरण: उन्हें छात्रों का ध्यान आया था।

जब राजनीतिज्ञों और सैन्य अधिकारियों में देश-हित को ताक पर रख कर स्वार्थ-साधन की होड़ लग जाए, तब विदेशी शक्तियों के लिए उनके आगे चारा फेंकने का रास्ता खुल जाता है। यह चारा पैसे के रूप में भी हो सकता है, और हथियारों के रूप में भी।

बंगला देश में ऐसा एक भी राजनीतिक दल नहीं था जिसका अपना सशस्त्र स्वयंसेवक संगठन न हो। जब शेष मुजीब ने सब राजनीतिक दलों को भंग करके केवल एक राजनीतिक दल (बंगला देश कुप्रक अभियानी लीग) रहने दिया, तब विभिन्न राजनीतिक दलों के सशस्त्र संगठन भूमिगत हो गए। शेष मुजीब ने अवैध हथियारों को स्वेच्छया जमा करवाने की चेतावनी दी। लगभग ५००० अवैध हथियार रखते पकड़े भी गए, पर समस्या समाप्त नहीं हुई। बंगला देश में व्याप्त अराजकता का कारण हथियारों का यह व्यापक प्रसार ही है।

पाकिस्तानी सेना बंगला देश से जाते-जाते अपने गुर्गों को जो हथियार सौंप गई, इन अवैध हथियारों में सबसे अधिक संख्या उन्हींकी है। पिछले महीनों में चीन, पाकिस्तान और अमरीका ने भी प्रचलन रूप से इस दिशा

में कोई कसर नहीं रखी। इसीलिए स्वभावतः राजनीतिक और सैनिक असत्तोष ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों जराजरता भी बढ़ती रही।

जिन सात मेजरों ने बंगबन्धु की, उनके परिवार की और निकट रिस्टेवरों की नृशंस हत्या की थी, उन्हें अपने इस कुकूत्य पर पश्चात्ताप हो या न हो, पर वे यह बखूबी जानते थे कि जिस दिन बंगला देश की जनता अस-लियत को पहचानेवाली, उस दिन उसके बाकीश का शिकार उन्हें अवश्य बनना पड़ेगा। इसी भय से वे जनता के सामने आने से बचते थे और अपने निवास-स्थान छोड़कर बंग भवन (राष्ट्रपति-निवास) में ही रहते थे। बंग भवन पर टैकों का पहरा था।

राष्ट्रपति सौरकर कहने को राष्ट्रपति थे, पर बस्तुतः इन सातों मेजरों के बन्दी थे और उन्हींके इशारे पर चलते थे। ये सातों मेजर, जिनमें मेजर दलीम और मेजर फारूख प्रमुख थे, संपूर्ण सेना पर अपना नियंत्रण देखना चाहते थे। पर अधिकांश वरिष्ठ सैनिक अधिकारी समझते थे कि अवित्तगत द्वेष का बदला पुकाने के लिए ही इन्होंने बंगबन्धु की हत्या की है। इस हत्या के पीछे किसी सिद्धान्त या देशहित की बात सर्वथा मिथ्या है।

जिन्होंने मेजर समझते थे कि बंगबन्धु के बो बनिष्ठ साथी बिना किसी आरोप के जेल में बन्द कर दिए गए हैं, अभी तक वे जनता में लोकप्रिय हैं, बंगला देश की आजादी में उनका अप्रतिम योगदान है, वे अपने प्रभाव का उपयोग करके किसी भी दिन सत्ता हाथिया सकते हैं।

१५ अगस्त, १९७५ को मुख्यमंत्री से ढाई महीना बीता था कि नवम्बर के शुरू में ही उनकी शीतानियत ने किर द्वारा मारा।

इन नवम्बर को सारा भारत दिवाली की खुलियां मना रहा था कि इन जिन्होंने मेजरों ने बंगला देश की राजनीति का ऐसा दिवाला निकाल दिया कि हरेक सम्म भनुष्य के मुंह पर उनके लिए 'धिक्कार' के सिवाय और कोई शब्द नहीं बचा।

इन्होंने सेंट्रल जेल के बन्दर जाकर सर्वथा असहाय, निरस्त-संगी, साथी-शूल्य चार महसूपूर्ण-वरिष्ठतम् राजनीतिक नेताओं की हत्या कर दी।

कौन थे ये चारों वरिष्ठ राजनीतिज्ञ ?

सैयद नज़रुल इस्लाम—जो शेख मुजीब के पाकिस्तान की जेल में बंदी

रहने पर बंबला देश के कार्यवाहक राष्ट्रपति थे ।

श्री डानुदीन अहमद—जो अस्थाधी सरकार के प्रधान मंत्री थे ।

श्री ए० एच० एम० कमलवर्मा—जो मुजीब के मंत्रिमंडल में वाणिज्य मंत्री थे ।

श्री मंसूरअली—जो मुजीब मंत्रिमंडल में प्रधान मंत्री थे ।

राष्ट्रपति सौंदर्कर जिस प्रकार इन सात मेजरों की कठपुतली बने हुए थे, उससे सेना के वरिष्ठ अधिकारी अंदर ही अंदर बहुत विसृज्ञ थे । उन्न चार वरिष्ठ और लोकप्रिय राजनीतिज्ञों की हत्या ने जैसे पानी सिर के ऊपर से गुजार दिया ।

लिंगेडिपर खालिद मूशर्रफ से यह सेतानी हरकत सहन नहीं हुई । वे दाका की सैनिक ट्रूकड़ी के कमांडर थे और मुजीब के प्रबल समर्थक थे । पन्द्रह अवस्त के बाद से ही मूशर्रफ ने अपने साथियों को कुछ महत्वाकांक्षी कविष्ठ अपराधों की कार्रवाजारियों के विरुद्ध तैयार करना शुरू कर दिया था ।

मूशर्रफ को लगा कि सौंदर्कर और उनके सलाहकारों के विरुद्ध मोर्चा लेने का सही अवसर आ गया ।

मूशर्रफ ने स्थल सेना की तीन बटाकियों की मदद से ढाका शहर पर कङ्गा कर लिया, छावनी की ओर जाने वाली सड़कों पर सख्त पहरा लगा दिया और ढाका हवाई अड्डे पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया ।

राष्ट्रपति भवन पर तीन टैंकों पर हेलिकोप्टर से और रेस्कोप्स मैदान में तीन टैंकों पर हवाई जहाजों से हमला करने का दिक्षावा किया और उन टैंकों को अपना गोला-बाहुद खाली कर बापस छावनी में जाने का आदेश दिया । सौंदर्कर पहले इसके लिए तैयार नहीं थे, पर बाद में खालिद मूशर्रफ से बातचीत के हारा समस्या सुलझाने को मान गए ।

इस बार्ता के बहाने खौदकर ने नारों मेजरों के लिए एक विशेष विमान की व्यवस्था करने का समय पा लिया और उनके परिवारों समेत उन्हें बैंकाक भेज दिया ।

खौदकर ने अक्त की नजाकत की समझते हुए मुख्य व्याधीश अबू सादत मुहम्मद सईद को राष्ट्र की बागड़ोर सौंप दी ।

नवे राष्ट्रपति ने राष्ट्र के नाम संदेश में जातीय संसद् (पार्लियामेंट)

भंग करने का और १९७३ के फरवरी मास में आम चुनाव कराने का ऐलान किया। साथ ही लोकतंत्र और सभी पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों में व्याप्त्या व्यक्त की।

इस सबसे ऐसा लगा कि मुजीब-समर्थक जो तत्त्व पहले घटना की आकृतिकता के कारण स्तब्ध और किंकर्तव्यविमूळ हो गए थे, अब जाग गए हैं। यह भी लगा कि अब बंगला देश में राजनीतिक स्थिरता के आसार पैदा हो गए हैं। लास्कर छात्रों के उल्लास की सीमा नहीं थी। उन्हें बंगवन्धु की अनिम अभिलाषा का भी ध्यान आया होगा।

दाका विश्वविद्यालय के हजारों छात्र और आसास के हजारों आवास-बृहू नर-नारी जलूस बनाकर बंगवन्धु के पर गए। जलूस के आगे शेष मुजीब की बड़ी तस्वीर थी। सबने उनकी मृत आत्मा को अद्वौजिलि अपित की और उसके बाद पास के बैदान में एकत्र होकर बंगवन्धु और उनके परिवार की स्मृति में शोक-सभा करके अपनी अकीदत के कूल चढ़ाए। लोगों की आंखों में आंसू थे, आवाचेश से कंठ अवरुद्ध थे, पर हृदय में इस बात का सन्तोष था कि आखिर बंगपिता को याद करना अब इच्छनीय अपराध तो नहीं रहा। जनता ने सरकार से मांग की कि शेष मुजीब को बाकायदा 'राष्ट्र का पिता' घोषित किया जाए और उन्हें वैसा ही सम्मान दिया जाए।

पर नाटक में कोई दृश्य स्थिर नहीं रहता।

फिर पट-प्रियतंत्र ही गया।

चार दिन की अवधि भी नहीं बीती थी कि खालिद मुशर्रफ को हत्या कर दी गई और मेजर जनरल जियारहमान, जिन्हें पहले मुख्य सेनापति से हटा दिया गया था, पुनः मुख्य सेनापति बन गए और उन्होंने स्वयं को मुख्य माझेल ला प्रशासक घोषित कर दिया।

अब जैसे अराजकता को और खुलकर खेलने का भौका मिल गया। सैनिकों और नागरिकों, सैनिकों और छात्रों, तथा सैनिकों और सैनिकों में छिपुट झड़पें होने लगीं।

दाका विश्वविद्यालय के छात्र मुजीब के समर्थक थे। जियारहमान के समर्थक सैनिकों ने इन छात्रों के बल निकालने के लिए विश्वविद्यालय पर

गोलियाँ बरसाईं। छावों ने जमकर मुकाबला किया। सैनिकों की और टूकड़ियाँ आईं। छाव फिर भी ढटे रहे। बहुत-से छाव और शिखक चिरप्रतार किए गए। सैनिक शासन ने बमन-चक्र तेज़ कर दिया। तब बहुत-से छाव नेता भूमिगत हो गए।

बंगला देश की नौसेना का केन्द्र है चटगाँव। वहाँ शेष मुजीब के निकट सहयोगी मलिक चौधरी की तथा अन्य अनेक प्रगतिशील नेताओं की हत्या कर दी गई, जिससे नौसेना के सैनिक भी उत्तेजित हो उठे और विद्यु-उर्हमान की समर्थक स्थल सेना की एक टूकड़ी के साथ उनकी अच्छी-खासी सदृप्त हो गई। रंगपुर और सेलपुर में भी सैनिकों ने लूट, शूट और बलात्कार प्रारम्भ कर दिए।

बंगला देश जैसे गृहयुद्ध के कानार पर पहुंच गया।

सात मेजरों ने बैकाक में जाकर जो बक्सव्य दिया, उससे स्पष्ट हो गया कि क्रान्ति की प्रतिक्रान्ति में अमरीका और पाकिस्तान की शह थी। उन्होंने पाकिस्तान या अमरीका से नामरिकता की प्रार्थना की। पर ऐसे नृशंस हत्यारों को अपने यहाँ शरण देने से जहाँ पाकिस्तान या अमरीका की भी कलई खुल जाती, वहाँ उन दोनों को अपने देश की जनता के सामने जबाब देना भी मुश्किल हो जाता।

बैकाक में उन्हें रहते-रहते १५ दिन हो गए, तब बाईलैंड की सरकार ने उन्हें और अधिक समय तक रखने में जरूरता व्यक्त की। अन्त में ये सातों मेवर लीविया चले गए। इस समय संसार में वो ही राष्ट्राध्यक्ष ऐसे हैं जो अपने की अतिमानव से कम नहीं समझते। एक हैं—गुबांडा के इदी अमीन और दूसरे हैं लीविया के कर्नल गदापी। ऐसे नर-पशुओं को लीविया के राष्ट्राध्यक्ष ही शरण दे सकते थे।

इस सब घटनाचक पर भारत का नुपर रहना बड़ा मुश्किल था। भारत की प्रधान मंत्री ने बंगला देश की सरकार को जेतावनी दी कि वहाँ स्थित भारतीयों के जानमाल की उत्तकी नीतिक उिम्मेदारी है। बंगला देश की सरकार ने भी यह स्वीकार किया। पर गृहयुद्ध की लपटों से विरो बंगला देश की सरकार कितनी असमर्थ है और पाकिस्तानी तथा अमरीकी तत्त्व वहाँ किस प्रकार सक्रिय हैं इसका भी सबूत मिलते देर नहीं लगती।

भारत को बदनाम करने के लिए अमरीकी पत्रों द्वारा यह मनधन्त्र समाचार प्रसारित किया गया कि भारत लंगला देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है और सीमा पर दोनों देशों की सेनाओं में लड़प हो रही है। साथ ही दाका स्थित भारतीय दूतावास में एक बम रख दिया गया। यह तो गनीमत हुई कि यथासमय उस बम का पता लग गया, नहीं तो अन्होनी होने में कसर क्या थी।

इस घटना के लगभग सप्ताह-भर बाद ही २१ नवम्बर को अमरीकी विदेश विभाग के दो वरिष्ठ अधिकारी डाका पहुंचे। छोबीस नवम्बर को 'नाटो' से सम्बद्ध पाकिस्तान के दो मेजर जनरल भी विमान से डाका पहुंचे। उनके पहुंचते ही सेना ने सारे हवाई अड्डे को बपने नियंत्रण में ले लिया। अन्य किसी भी विमान को डाका में नहीं उतरने दिया गया। पाकिस्तानी मेजर जनरल हवाई अड्डे से सीधे बंग भवन गए। वहाँ उन्होंने प्रधान सेना-पति और मुख्य मार्शल ला प्रशासक कियाउररहमान से मेंट की। वे बंगला देश के दो डिप्टी मार्शल ला प्रशासकों से भी मिले। ये दोनों डिप्टी पाकिस्तानी सेना के सदस्य के रूप में सन् ७१ से पहले 'नाटो' से सम्बद्ध थे। पाकिस्तानी मेजर जनरल, दो घंटे बाद, जिस विमान से आए थे, उसी विमान से जापन कराची चले गए। उनके जाते ही सेना ने हवाई अड्डे से अपना नियंत्रण हटा लिया।

इससे पूर्व बंगला देश का एक शिष्टमंडल चीन के लिए भी रवाना हो चुका था। इस शिष्टमंडल में कौन लोग थे, यह विदित नहीं हो सका। व्यापारिक शिष्टमंडल के नाम से सीमित शिष्टमंडल भी हो जा सकता है।

इस प्रकार जियाउररहमान पाकिस्तानी सेनाधिकारियों, अमरीकी राजनीतिज्ञों और चीन के व्यापारियों से गुपचुप क्या परामर्श करते रहे, यह तो वही जानें, पर जिस दिन दो पाकिस्तानी मेजर जनरल डाका आए थे, उसी दिन राजनय के इतिहास में एक भयंकर घटना घट गई।

भारतीय उच्चायुक्त भी सभर सेन प्रातः साढ़े नीं बजे भारतीय उच्चायोग (दूतावास) में पहुंचकर उथों ही कार से उतरे कि कुछ सशस्त्र व्यक्तियों ने, जो पहले से ही स्वायत-कक्ष में बैठे उनके बागमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, कक्ष से बाहर निकलकर अपने कपड़ों के नीचे छिपाई पिस्तौलें निकाल

ली और समर सेन पर गोली-बर्पा कर दी। गोली समर सेन के कंधे में लगी। वे तुरन्त जमीन पर बिर पड़े।

चौकीदार भी गाफिल नहीं थे। उन्होंने भी तुरन्त गोली चलाई। चार हमलावर बहीं डेर हो गए। दो घिरफ्तार कर लिए गए। इस मुठभेड़ में दो चौकीदार भी घायल हो गए।

बाब में पता लगा कि ये हमलावर बंगला देश में जातीय समाजतांत्रिक दल के नाम से विच्छात राजनीतिक दल के सदस्य थे। सात नवम्बर को विचाररेहमान ने सेनाध्यक्ष बनते ही विन बन्दियों को छोड़ा था, उनमें उक्त दल के दो नेता—एम० ए० जलील और अब्दुर्रव भी—जामिल थे और उन्होंने ही समर सेन पर हमला करने की योजना तैयार की थी।

समर सेन की कंधे की हड्डी टूट गई थी। आपरेशन करके कंधे से गोली निकाल दी गई। वे बच गए।

एक बार फिर अनहोनी टल गई।

बगले दिन भारतीय वायुसेना का एक विमान कुछ डाक्टरों और विदेश विभाग के विरिष्ट अधिकारियों को लेकर ढाका पहुंचा। बंगला देश की सरकार ने विमान को हवाई अड्डे पर उतारने की अनुमति दी। डाक्टरों ने समर सेन का परीक्षण किया और जीवित बच जाने पर उन्हें बधाई दी।

विमान चला था और समर सेन को भारत लाने के लिए। उनका दिल्ली या कलकत्ता में—जहाँ वे चाहें—इलाज कराने की व्यवस्था की गई। पर समर सेन ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। उन्होंने ऐसे नाजुक मीके पर भारत आने से इन्कार कर दिया और ढाका में ही अपने पद पर बने रहने का आश्रह किया।

श्री समर सेन भारत के वरिष्ठतम राजनयज्ञों में से हैं। वे संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के स्थायी प्रतिनिधि रह चुके हैं और विभिन्न देशों के कूट-नीतिक कुचक्कों को अच्छी तरह समझते हैं। शायद उन्होंने सोचा होगा कि ऐसे इस प्रकार पायल अवस्था में भारत चले जाने से दोनों देशों में पारस्परिक कटूत का कहीं कोई नया अव्याय न खुल जाए। क्या कहने हैं श्री समर सेन की इस जी-दारी के!

श्रीमती इन्दिया गांधी ने बंगला देश की सरकार को १५ दिन पहले

भारतीयों के ज्ञानमाल की रक्षा के लिए जो चेतावनी दी थी, वहा समर सेव पर हमला उसी चेतावनी का उत्तर था ?

अबले दिन बंगला देश के राष्ट्रपति श्री सर्वेम ने श्रीमती इन्दिरा गांधी को सीधा फोन करके लेव प्रकाश किया और भविष्य में इस प्रकार की घटना न होने देने का आश्वासन दिया ।

प्रश्न यह है कि इस समय बंगला देश में जैसी अराजकता और गृहयुद्ध की स्थिति चल रही है, उसे देखते हुए क्या बंगला देश की सरकार के किसी आश्वासन की कोई कीमत रह जाती है ? क्या उसमें इतनी सामर्थ्य है ? यदि समर सेना को कुच्छ हो जाता तो स्थिति कितनी गंभीर हो जाती ! परमात्मा की दया से वे बाल-बाल बच गए, यही सन्तोष का विषय है । अब बंगला देश सरकार की कुताकार्यता इसी बात से परखी जाएगी कि भारत सरकार ने जो मांग की है उसे पूरा करने में कह कितनी तत्परता दिलाती है । भारत ने मांग की है कि भी समर सेन पर हमले के पूरे घड़वंत का पर्दाफाश किया जाए और अपराधी व्यक्तियों को उचित दण्ड दिया जाए ।

याहूआ खां के शासन के समय पाकिस्तानी सेना ने बंगला देश के बुद्धि-जीवियों को चुनूनकर मारा था । अब राजनीतिज्ञों को चुनूनकर करकर दिया गया । पन्द्रह अगस्त को और ३ नवम्बर को नृशंस हत्यारों का लक्ष्य निरिचित था । सैनिक तानाशाह बनने का स्वप्न देखने वाले नहीं आहते थे कि ऐसा एक भी राजनीतिक नेता बंगला देश में जीवित बचे जो खुद उन्हें अस्वीकार्य हो ।

१६५८ में फोर्ड मार्शल व्युबल्झां ने भी पाकिस्तान की शासन-व्यवस्था अपने हाथ में ली थी, क्योंकि वे भी भ्रष्टाचार और राजनीतिक अव्यवस्था से बाजिज जा चुके थे । लेकिन पूरी सफलता के साथ उन्होंने नागरिक शासन की मुद्रा बनाए रखी । वहाँ न नृशंस हत्याएं की गई, न फौजी बवंरता का ऐसा नम-ताण्डव हुआ । अब बंगला देश में जानबूझकर जो राजनीतिक रिक्तता पैदा की गई है उसे जियाउररहमान और उनके साथी शासन के सारे सूक्त अपने हाथ में ही लेकर पूरा करना चाहते हैं ।

जो राष्ट्रपति और डिप्टी चीफ मार्शल ला प्रशासक नियुक्त किए गए हैं उनका कहना है कि "हमपर ये काम जबदंस्ती थोपे गए हैं, हमारे काम

यह है नहीं। हमें तो जिस दिन इशारा मिलेगा, हम यह काम छोड़कर अलग हो जाएंगे, उसके बाद हम किसी भी दोषक्ष में जाने को तैयार हैं।”

जिसका काम उसी को सांचे।

सैनिक अधिकारियों में राजनीतिक समस्याओं की कितनी समझ होती है, यह कल्पना का विषय है। भविष्य में आने वाले संकटों का पूर्व अनुमान लगाकर वे देश को सही दिशा-निर्देश दे सकेंगे, या देश की नाव को चौंच मंजूधार में बुकों देंगे, वह अभी कौन कह सकता है?

इस समय बंगला देश चारों ओर आग की लपटों में घिरा है। इस घेरे में से निकल सकना उसके लिए निकट भविष्य में संभव नहीं दीक्षित। यह लपटों का घेरा विशाल प्रश्नचिह्न बना हतिहास की छाती पर खड़ा है।

आग जनता में इस समय निराशा की कंसी लिपति है, इसका आभास बहीं के एक नागरिक के इस उद्गार से हो जाएगा जो उसने किसी विदेशी पत्रकार के सम्मुख प्रकट करने का साहस किया था—“हमारे उद्गार का कोई उपाय नज़र नहीं आता। हमारी सब संस्थाएं और संगठन समाप्त हो चुके हैं। हरेक व्यक्ति भयभीत है, कोई न कोई प्रतिशोध की लातिर उसे मारने को तैयार बैठा है। अब हम रात को निश्चिन्त होकर सो भी नहीं सकते। या खुदा ! हमारा क्या होने वाला है ?”

ऐसे समय बारम्बार भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की चेतावनी की ओर ध्यान जाता है। वे कहती हैं :

“हमें अपने विकास का मार्ग छोड़ने को चिन्ह करने के लिए चारों ओर से दबाव ढाला जा रहा है। इसी उद्देश्य से भारत के कुछ पड़ोसी देशों को भारी मात्रा में हथियार दिए जा रहे हैं। पर हमने जो रास्ता चुना है, उससे दुनिया की कोई ताकत हमें हटा नहीं सकती।”

इसके बाद जब श्रीमती गांधी कहती हैं :

“किसी व्यक्ति को खत्म किया जा सकता है, लेकिन उसके आदशों और सिद्धान्तों को खत्म नहीं किया जा सकता। यदि ये सिद्धान्त सही हैं, तो लाखों-करोड़ों लोग उन्हें बढ़ावा देने के लिए आने वाले जाएंगे।”

—तब ऐसा लगता है कि यह वाणी केवल भारत की आत्मा की पुकार नहीं है, प्रस्तुत बंगला देश के प्रत्येक निवासी की भी अन्तरात्मा की आवाज यही है।

यह है आत्मविश्वास की वाणी, ‘सत्यमेव जयते’ में आस्था की वाणी, और सत्य की विजय के लिए आत्मोत्सर्ग तक के लिए सदा तैयार रहने के लिए शाश्वत ओज और तेज की वाणी।

लाखों-करोड़ों पददलितों, शोषितों, अभावप्रस्तों, और साम्राज्यवाद के कुचकों से पीड़ितों के मन में आज्ञा का संचार कर देने वाली और विद्वान्-व्यापी अनैतिकता के अम्बार पर मानवीयता और नैतिकता का झांडा गाढ़ने की हिम्मत रखने वाली, अरिदलसंहारिणी, आधुनिक दुर्गा, देवी इन्दिरा जब कहती है :

“मैं जब कहती हूँ कि खतरा है, तो सचमुच खतरा होता है।”

और—

“जब पड़ोस में आग लगी हो तो उसकी तपिश हम तक भी पहुँचती है। उस समय हम चुप नहीं बैठ सकते। उस आग को बुझाना हमारा नैतिक कर्तव्य हो जाता है। हम नहीं चाहते कि फिर लाखों लोग शरणार्थी बनकर भारत पहुँचें।”

—तब इस साहसिक वाणी के मर्म को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और मन में से निराजा का भाव निकाल देना चाहिए।

नयोंकि मानव नश्वर है, पर मानवता अनश्वर है।

## विप्लवी भूमि

२२ मई, सन् १४६८ ई० ।

यह वह दिन है जब प्रथम यूरोपीय व्यक्ति का भारत में आगमन हुआ था ।

१४वीं सदी में भारत के ऐश्वर्य की कहानी ने यूरोप-जासियों को चकाचौंच में डाल दिया था । यूरोपियां समझते थे कि भारत की घरती सौने की है और वहाँ के कण-कण में सोना समाया है । भारत के इस अतुल ऐश्वर्य से खिचकर यूरोप के देशों में भारत पहुंचने के समुद्री मार्ग ढूँढ़ने की होड़ मच गई । कोलम्बस भारत का समुद्री मार्ग ही सौने निकला था, पर वह पहुंच माया अमरीका ।

अमरीका की सौज का श्रेष्ठ भले ही कोलम्बस को मिले, पर यूरोप से भारत पहुंचने का समुद्री मार्ग जिस व्यक्ति ने सबसे पहले खोजा, वह था पुर्तगाल-निवासी वास्कोडियामा । वही प्रथम यूरोपीय था जो २२ मई, १४६८ ई० को भारत के पश्चिमी समुद्र तट के कालीकट बन्दरगाह पर उतरा था ।

कालीकट के राजा जमोरिन ने भारतीय परम्परा के अनुसार इस नये अविष्यि का आदर-सत्कार किया । पर इस समावर के बदले, एक सदी से भी कम समय में, इन चतुर व्यापारियों ने मंगलोर, कोचीन, श्रीलंका और गोवा में अपना पुर्तगाली ज़म्भा फहरा दिया ।

पुर्तगाली अपने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ईसामसीह की मूर्ति से अंकित सलीब लेकर भारत आए थे । जब उन्हें प्रचुर मात्रा में यहाँ सौना उपलब्ध होने लगा तो उन्होंने सलीब छोड़कर दोनों हाथों से सौना बटोरना शुरू कर दिया । आखिर सौना बटोरते-बटोरते उनके हाथ इतने थक गए कि उनमें तलवार पकड़ने की ताकत न रही । तब उन्होंने उनको

अनायास भारत से क्षेत्र दिया ।

इसी क्रम में जो पहला अंग्रेज भारत आया, उसका नाम था कैट्टेन हाकिन्च । सन् १६०८ई० में वह जैम्स प्रथम से मुगल साम्राज्य के नाम पर लेकर सूरत पहुँचा था । पर उच्च व्यापारियों ने उसे वहाँ से आगे नहीं बढ़ाने दिया ।

सन् १६१२ई० में सूरत के समुद्री तट के पास अंग्रेजी नीलेना के कल्पान बेस्ट ने पुर्णगाली सैनिकों को हराया । इसके बाद ही पहले सूरत में और पीछे हुगली में अंग्रेजों की व्यापारी कोठियाँ बनीं ।

इसके बाद एक अंग्रेज डाक्टर ने बहांपीर की शहजादी और जाहजुजा की किसी बेगम का हलाज किया, जिससे अंग्रेजों को सारे भारत में व्यापार करने की सुविधा मिल गई ।

आगे चलकर फांसीसी भी भारत पहुँचे । तब भारत से व्यापार करने के लिए इन यूरोपीय जातियों में आपसी होड़ चली । पहले भानुली लाल-डॉट चलती रही, बाद में आपस में लड़ाइयाँ होने लगीं । धीरे-धीरे इन छन-खोभी यूरोपीय व्यापारियों के कारण मुगलकालीन भारत राजक्षेत्र में परिवर्तित हो गया ।

अंग्रेज व्यापारियों ने अपना पहला कदम बेशक सूरत में रखा, पर उनका सिवका जमा पूर्नी भारत में । इसका कारण यह था कि पश्चिमी समुद्री-तट पर भराठों का जबर्दस्त जहाजी बेड़ा था, जिससे अंग्रेजों या अन्य यूरोपीयों की वहाँ दाल नहीं गल पाई । इधर बंगाल का समुद्री तट सर्वथा वरक्षित था, इसलिए इधर ने आसानी से कामयाब हो गए ।

बुरोप के जितने व्यापारी भारत आए, उनमें सबसे पहले भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की बात फांसीसियों के ही दिमाग में आई थी । फांसीसियों की देखावेसी इस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज व्यापारी भी भारत में साम्राज्य-स्थापना का स्वर्ण देखने लगे ।

मरते समय अलीबदी लाल बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को आगाह कर गया था, “अंग्रेजों को विलेबन्दी करने की या फौज रखने की इजाजत मत देना, नहीं तो तुम इस मुल्क में नहीं रह पाओगे ।”

उधर सन् १७५७ में प्लासी की लड़ाई में बंगाल के नवाब की हार हो

गई और तब बंगाल का स्वातंत्र्य-सूर्य ही नहीं, भारत का भी स्वातंत्र्य-सूर्य ढूँढ़ गया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत की परतंत्रता बंगाल से प्राप्त हुई।

प्लासी की सदाई के तीन साल पहले तक अंग्रेज व्यापारी ढाका और मुशिदाबाद की सड़कों पर डरते हुए चला करते थे।

बंगाल का शासन भले ही हारा हो, पर जनता नहीं हारी थी। सन् १७५७ के बाद से ही बंगाल की जनता किसी न किसी रूप में अंग्रेजों से मुक्ति पाने का प्रयास करती रही।

मीर जाफर बंगाल की बड़ी पर अंग्रेजों की सहायता से बैठा था, इसलिए उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी को यासिक भत्ता देना स्वीकार किया। अपने राजमुकुट का मूल्य छूकाने में उसका सारा राजकोष खाली हो गया, पर अंग्रेजों का पावना कभी छूकता नहीं हो पाया। जब मीर कासिम गढ़ी पर बैठा तो अंग्रेजों के इस अृण से मुक्ति पाने के लिए उसने २० सितम्बर, १७६० को बदैवान, मिदनापुर और चटगाँव की जमीदारी अंग्रेजों को दे दी। भारत के इस भाग में अंग्रेजी अधिकार का यही पहला दस्तावेज़ है।

उस समय इन इलाकों में मराठों का दबदबा था और अंग्रेजी शासन का प्रवेश नहीं हो पाया था। अलीवर्दी सां के बुझाने तक बंगाल पेशावाओं को चौथ दिया करता था। शाह आलम ने बंगाल की दीवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दी तो पेशावाओं को चौथ मिलनी बन्द हो गई। तब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् १७६६ में निश्चय किया कि जंगल महाल में सेना घेजकर वहां जमीदारों को मालमुजारी देने के लिए बाह्य किया जाए और उनकी सारे किलेबन्दियों को नष्ट कर दिया जाए। परिणामस्वरूप जंगल-महाल के इलाके में और जासपास ३००-४०० मील तक चिंगोह की आग लड़क उठी।

लेफिटनेंट फ़र्मुसन इस आग को बुझाने के लिए फौज लेकर जंगल महाल पहुँचे। प्रदेश के निवासियों पर फौज ने अक्षयनीय अत्याचार किए। व्यवस्थित और मुसंबित कम्पनी की फौज के सामने जमीदार लोग टिक न सके। वे हार तो गए, पर उन्होंने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार न की।

वे अपने-अपने महलों और किलों में आग लगाकर जंगलों में जा डिये।

इस विद्रोह से पूरी तरह अंग्रेज निपट भी नहीं पाए थे कि उत्तरी और पूर्वी बंगाल में सशस्त्र संन्यासियों और कफीरों का विद्रोह भड़क उठा।

साधुओं के विद्रोह की बात मुनने में विचित्र-सी लग सकती है, पर सच्चाद् अकबर के समय से ही सशस्त्र साधुओं के ऐसे गिरोहों की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं, जो राजकीय खजानों को लूट लेते थे। इन संन्यासियों में हिन्दू भी थे, मुसलमान भी। कभी-कभी ये अपनी-अपनी जमात के बर्चस्व की खातिर आपस में भी लड़ पड़ते थे, पर अकसर किसी एक या दूसरे राजा की सहायता करके ये उसकी विजय में सहायक होते थे। इनकी संख्या सैकड़ों और हजारों तक होती थी, इसलिए जिस राजा को इनका सहयोग मिल जाता, उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती। एक बार सशस्त्र संन्यासियों के ऐसे ही एक दल ने किसी बृद्धा साधी के नेतृत्व में औरंगजेब की जाहीं सेना से भी टक्कर ली थी जिसमें जाहीं सेना को मुंह की खानी पड़ी थी।

बंकिमचन्द्र के 'देवी चौधरानी' नामक उपन्यास में भवानी पाठक और देवी चौधरानी की जो चर्चा आती है, वह काल्पनिक नहीं है, वहिंके दोनों इसी प्रकार के साधुओं के एक दल के साथ, जिसका नेता मजनूशाह था, सम्बद्ध थे। इस मजनूशाह को अंग्रेजों ने पकड़ने की बड़ी कोशिश की, पर वह उनके हाथ नहीं आया।

इन संन्यासियों का कहीं निश्चित स्थान नहीं था। वे उत्तर प्रदेश से लेकर बंगाल तक घूमते रहते। अंग्रेजों के आमने के पश्चात्, पूर्वी बंगाल इनका विशेष क्रियाक्षेत्र बन गया। इनका हिन्दू और मुस्लिम जनता पर काफी प्रभाव था और जनता तथा बड़े-बड़े जमीदार रुपवा-पैसा, राशन-पानी तथा हरके-हरियार से इनकी छिप-छिपकर सहायता करते रहते थे।

सन् १७६३ में इन संन्यासियों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की ढाका बाली कोठी पर कब्जा कर लिया। अंग्रेज ढाका छोड़कर भाग गए। दीनाजपुर, जलपाईगुड़ी, मैमनसिंह, रंगपुर और राजशाही में इन संन्यासियों की कम्पनी की सेना से अनेक बार मुठभेड़ हुई। अधिकांश स्थानों पर कम्पनी की सेना हारी, पर कहीं-कहीं संन्यासियों की सेना भी परास्त हुई। सन् १७७२ में

बलपाईगुड़ी में संन्यासियों की बड़ी करारी हार हुई। इस लड़ाई में बहुत-से संन्यासी निर्ममतापूर्वक मारे गए। उसीके बाद बलपाईगुड़ी पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो पाया।

संन्यासियों ने पुनः अपनी शनित-बृद्धि की। लगभग गांधी हजार संन्यासियों ने एक बार फिर ढाका पर हमला किया। संन्यासियों के निरन्तर आक्रमणों से पूर्वी बंबाल में ईस्ट इंडिया कम्पनी का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। इन संन्यासियों का अपना गुप्तचर विभाग भी रहता था जो प्रतिपक्षी दल की समस्त गतिविधियों की जानकारी देता रहता था। सन् १७३६ से सन् १७८६ तक के दस सालों में कम्पनी की सेना में और इन संन्यासियों के गिरोहों में अनेक मुठभेड़ें होती रहीं। सन् १७८६ में मजनूशाह गंगा पार करते हुए घोड़े से गिरकर मर गया। उसके बाद मजनूशाह के प्रधान शिष्य मदारबद्दा, मूसाजाह और भवानी पाठक अधिक दिनों तक संन्यासियों की इस सैन्य शक्ति को कावम नहीं रख सके। सन् १७६४ के आस-पास संन्यासियों का यह विद्रोह समाप्त हो पाया।

संन्यासियों के विद्रोह का दावानल पूरी तरह शान्त भी नहीं हो पाया था कि मिदनापुर के जंगल महाल इलाके में चुवाह लोग विद्रोह कर बैठे।

चुवाहों ने कम्पनी के अधिकारियों को जैन से नहीं बैठने दिया। जिन जर्मनियारों की जानीरें जब्त हो गई थीं, वे इस विद्रोह में प्रमुख सहायक थे। मिदनापुर के सारे जंगली प्रदेश पर, जिसमें बीरभूम, बदेवान और मानभूम के जिलों के जंगली प्रदेश भी शामिल थे, जब पूरी तरह अंग्रेजों का कब्जा हो गया, तब उन्होंने जंगल महाल के नाम से एक अलग महाल बनाया। उन दिनों इस प्रकार के तैर्हस महाल इस जिले में थे। पर सन् १८३३ के बाद यह जिला समाप्त करके इसके इलाके अन्य जिलों में बांट दिए गए।

चुवाहों के विद्रोह से निपटने में भी अंग्रेजों को कई साल लगे। सन् १७६० के आसपास मुगल शासन पूर्वी भारत से समाप्त हो गया था और सारी शक्ति ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में आ चुकी थी पर चुवाहों का विद्रोह अभी शान्त नहीं हुआ था कि मिदनापुर के उत्तरी भाग की अन्य जातियों ने सन् १८०६ में विद्रोह के अभिनकुष्ठ की अग्नि प्रदीप्त कर दी। इसे इतिहास में 'नायकों के विद्रोह' की संज्ञा दी गई है।

नायक लोग मुर्गों का मांस खाते थे, पर जौ-ब्राह्मण में भक्ति रखते थे। उन जातियों से इनका गुजारा होता था जो बगड़ी के राजाओं द्वारा इनकी सेवा के पुरस्कार-स्वरूप इनको प्रदान की जाती थीं। जब अंग्रेजों ने बगड़ी के राजा छत्तरसिंह को गढ़ी से उतारकर उसका राज्य अपने समर्थक व्यक्ति को सौंप दिया तो नायकों की जातीरें छीन ली गईं।

छत्तरसिंह के पतन के बाद इन नायकों का नेता बना अचलसिंह जिसने जंशलों में शरण लेकर अंग्रेजी हक्कमत के विरुद्ध विद्रोह संगठित किया। एक बार फिर कपणनी का अस्तिरच संकट में पड़ गया। मराठे और राजपूत सैनिकों ने अचलसिंह का साथ दिया। अचलसिंह को पकड़ने के सब आयोजन विफल हुए। अन्त में अपने ही किसी साथी के विश्वासवात से अचलसिंह पकड़ा गया। दीर अचलसिंह के बाद अनेक नेताओं ने नायक-विद्रोह की बायडोर संभाली। सन् १८१६ में अंग्रेजों ने नायक-विद्रोह को पूरी तरह समाप्त करने के लिए उनके केन्द्र को आग लगा दी और सबा दो सौ आदमियों को विद्रोह का आरोप लगाकर खुले आम फाँसी पर लटका दिया।

नायक विद्रोह के अन्तिम चरण में लाड़ एमहस्टर्ट के समय एक महरूम-पूर्ण घटना घटी।

दूसरा बर्मा-युद्ध चल रहा था। भारत की अंग्रेजी सरकार ने बर्मा निवासियों के प्रबल प्रतिरोध का सामना करने के लिए चटगांव से भारतीय सैनिकों को बर्मा भेजने का निष्क्रिय किया। समुद्री मार्ग से भेजने पर लटरा था, इसलिए स्थल मार्ग चुना गया। उस समय सवारी का बन्ध कोई साधन न होने से सैनिक को बैलों की पीठ पर जाने के लिए कहा गया। सैनिक अधिकांश ब्रितिजित देहाती हिन्दू थे। इससे उनकी धार्मिक भावना को और जन्मजात संस्कार को ठेस लगी। उनके लिए बैल शिवजी के बाह्य नन्दी का प्रतीक था। उन्होंने जाने से इन्कार कर दिया। प्रातः कालीन कवायद के समय जब अंग्रेज कप्तान कार्टराइट ने पूछा—कि बर्मा जाने के आदेश को मानना चाहते हैं या नहीं, तो सब सैनिकों ने हँड़तापूर्वक अपनी अनिञ्चा व्यक्त कर दी।

इसके तुरन्त बाद उनके हुयियार छीन लिए गए और कोष्ठोन्मत्त अंग्रेज सेनापति के आदेश से लगभग ३०० सैनिकों को एक पंचित में खड़ा करके

निर्ममतापूर्वक पशुओं की तरह जलियों से भूत दिखा गया और उनकी लाशों को समुद्र में पेंक दिया गया ।

अमृतसर का जलियांवाला बाच काण्ड सन् १६१६ में हुआ था, किन्तु बंगाल की धूमि पर यह मरम्मान्तक रक्तरंजित 'जलियांवाला काण्ड' उससे भी लगभग १०० साल पहले सन् १८२४ में हुआ था ।

इसे बैरकपुर का प्रबन्ध सैनिक पिंडोह कहा जा सकता है क्योंकि ये सब सैनिक बैरकपुर छावनी के ही थे ।

इस काण्ड के आसपास ही चौबीस परगना और करीबपुर में बहावियों का विद्रोह प्रारम्भ हो गया । इस विद्रोह का नेता या उत्तर प्रदेश के रायबरेली का सैयद अहमद नामक एक तीव्रयाक्ती, जिसका भारत के बाहर तुर्की और अरब देशों के मुसलमानों से भी सम्बन्ध था ।

जब बारेंग हेस्टिंग्स ने रहेला पठानों को निर्भूल करने के लिए दसन प्रारम्भ किया, तब सैयद अहमद ने उत्तरी भारत और पूर्वी भारत का दौरा किया और मुसलमान शासक जिस तरह प्रादेशिक शासनकर्ता नियुक्त करते थे, उसी तरह उसने अपने चार प्रमुख शिष्यों को प्रधान धर्मगुरु नियुक्त किया । इस संगठन का प्रधान केन्द्र रखा गया पेशेवर में और सीमाप्रान्त के पठानों को संगठित करके पंजाब के सिल्ह राज्य को ज्वाला करने की योजना बनाई गई ।

उस समय भारत में जितनी मुस्लिम रियासतें थीं, वे घन-घन से इस बहावी आन्दोलन की सहायता कर रही थीं । बहावियों के आन्दोलन से ही राजनीति में साम्प्रदायिकता का समावेश हुआ और हिन्दुओं को लूटना तथा उनकी हत्या करना पुण्य का कार्य समझा जाने लगा । इससे पहले के विद्रोह में साम्प्रदायिकता का अंश नहीं था, या या भी तो इतना नवाच्य कि वह सामने नहीं आता था । पर बहावी आन्दोलन ने इस्लाम की आँड में अंग्रेज-विरोध के साथ हिन्दुत्व-विरोध को भी अपना लक्ष्य बना लिया ।

बहावियों के इस आन्दोलन में मियां तीतू भीर का नाम स्मरणीय है । वह बंगला देश के चारपुर का निवासी था । उसका असली नाम या निसार बली । पेशेवर पहलवान के रूप में वह विरुद्धात था । वह अच्छा मुकेबाज और लड़त भी था । जब तीतू मियां मक्का गए, तब उनकी मुलाकात सैयद अहमद से हुई और उब से तीतू मियां ने पूर्वी बंगाल में बहावी आन्दोलन की

जड़ जमाने के लिए व्यपने-व्यापको अप्रित कर दिया ।

तीतू मियां ने अपने तीन-चार हजार अनुयायी तैयार कर किए और उन्होंने नदिया, फरीदपुर और चौबीस परगना से अंग्रेजों के शासन की समाप्ति की घोषणा कर दी ।

१४ नवम्बर, सन् १८३१ को कलकत्ता से कम्पनी की फौज भेजी गई । १७ नवम्बर को फौज की एक और टुकड़ी भेजी गई । पर तीतू मियां के जोशीले जवानों के सामने अंग्रेजी सेना को पीछे हटना पड़ा । बाद में अंग्रेजों ने और बड़ी सेना भेजी । तीतू मरते दम तक लड़ते रहे । अन्त में उनके अनुयायी पराजित होकर भाग खड़े हुए । इस खुड़ में तीतू मियां के साड़े तीन सौ बहावी सैनिक बन्दी हुए ।

उसके बाद भी बहावी सैनिक अंग्रेजों से छिट-पुट मुठभेड़ों में उलझते रहे, किन्तु उन्हें कहीं सफलता नहीं मिली । धीरे-धीरे सरकार को उनकी गुप्त योजनाओं का पता लग गया । अंग्रेजों ने देखा कि आम मुस्लिम जनता की सहानुभूति इस आनंदोलन के साथ है, इसलिए उसने लड़ाई-आगड़े का रास्ता छोड़कर साम-दाम का रास्ता व्यपनाया और इस तरह उन्हें व्यपने वश में करने की सोची ।

बाद में अंग्रेजों की यही नीति मुस्लिम लीबी नेताओं के साथ भी खूब कारगर हुई ।

सन् १८५४ के प्रारम्भ में कम्पनी के अत्याचार और कूलासन से तंग आकर संघालों ने प्रतिकार किया । संघालों के जातीय प्रतीक शाल वृक्ष की टहनी सेकर संघालों के द्वात गांव-गांव आकर भावी चिंगाह का शंख फूंकने लगे । अन्त में ३० जून, १८५४ ई० को तीस हजार संघाल घनुषबाण और भाले हाथ में लेकर कलकत्ता की ओर चल पड़े ।

उनका उद्देश्य शान्तिपूर्ण उपायों से अपनी भाँग अधिकारियों तक पहुंचाना-भर ही था । वे अपनी पली-पुड़ी आदि पूरे परिवार के साथ जलूस बनाकर चल रहे थे और उनके आगे-आगे माथल और ढाक बजते जा रहे थे । परन्तु उनके जलूस को बीच में रोक दिया गया तो उनके शान्तिपूर्ण आनंदोलन का रुच बदल गया ।

इसके साथ ही दो संघाल चिंगाही नेताओं पर चोरी का आरोप लगा-

कर उन्हें बनी बनाया गया, तो संथाल भड़क उठे और उनका जंगलीपन जाग उठा। उन्होंने लूटमार और बस्तियों को जलाना प्रारम्भ कर दिया। उसके बाद अंदेरों पौज ने संथालों की बस्तियों को धेरकर उनमें आग लगा दी। उन्हें आरम्भसमर्पण करने के लिए कहा गया और जिन्होंने आरम्भ-समर्पण नहीं किया उन्हें शोलियों से भूत दिया गया। इसे संथालों का सौधा हृत्याकाण्ड ही कहा जा सकता है।

संथालों का विद्रोह लगभग ६ मास तक चला। अन्त में कम्पनी के अधिकारियों को अफल आई। अब तक वे संथालों से केवल कर ही बसूल करते थे, किन्तु संथालों की मुख-मुखिधा की वे परवाह नहीं करते थे। किन्तु इसके बाद उनकी मुख-मुखिधाओं की तरफ भी घ्यान दिया जाने लगा। इस छह महीने के विद्रोह में अंदेरों को जितना धन व्यय करना पड़ा, वह इस खर्च के शासन-व्यय से अधिक था।

सन् १७५७ में लाड़ बलाइच ने वडमत करके प्लासी के भैदान में मुद्द जीता था। उसके बाद वे सौ वर्षों का इतिहास अंदेरों की साम्राज्य-लिप्सा और अर्द्ध-लिप्सा का इतिहास है।

२३ जून, १८५७ को प्लासी की लड़ाई को सौ वर्ष पूरे होने थे। तभी इस फ्रांसीसी के उपलक्ष्य में भारत में सर्वत्र एक ही दिन विद्रोह का झण्डा झुलन्द करने का निश्चय किया गया। एक छावनी से दूसरी छावनी तक लाल कमल घेजा गया। उस समय यूरोप में अंदेरों की रूस के साथ लड़ाई चल रही थी, इसलिए भारत में अधिक अंदेरों सेना रखना सम्भव नहीं था। देसी सैनिकों की संख्या उस समय दो लाख १५ हजार थी। इसलिए भारतवासियों ने सोचा कि एक साथ सभी जगह लड़ाई जुरू करने से हमारी जीत निश्चित है। जून का महीना भी इस विद्रोह के लिए उपयुक्त था, क्योंकि उत्तर भारत में उस समय भयंकर गर्मी पड़ती है और ज़िटेन जैसे ठंडे मूल्क से आने के कारण अंदेरों के लिए वह गर्मी असह्य होती।

१८५७ का यह विद्रोह कितना व्यापक था, इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इस विद्रोह से अंदेरों को सरकारी खजानों के लूटे जाने, कर वसूली न होने और विद्रोह को दबाने के लिए बतिरिक्त कर्ज लेने के कारण लगभग २५ करोड़ रुपये की हानि हुई थी और लगभग

दो लाख भारतवासियों ने इस संघान में अपने प्राण दिए थे। इस विद्रोह के दिनों में अंग्रेजों में प्रतिशोध-भावना इतनी प्रबल थी कि उनके दिमाग पर खूनी नशा छा गया था। सैकड़ों देसी सैनिकों को बिना मुकदमा चलाए फांसी पर चढ़ा दिया गया था, सैकड़ों गांव जला दिए गए थे और निर्दोष स्त्री-पुरुषों को बिना शिशु और बृद्ध का बहाल किये अमानवीय रूप से कट्टा किया गया था। अंग्रेजों के उन अत्याचारों की विचाल इतिहास में अन्यत्र मिलनी मुश्किल है।

यह सब वर्णन करने का तात्पर्य इतना ही है कि जिस दिन से अंग्रेजों ने इस देश की शरणी पर पांच रखा था, उसी दिन से बहाँ उनके विरुद्ध एक के बाद एक विद्रोह पनपता रहा और बंगाल का यह पूर्वी भाग उन विद्रोहों की विशेष कीड़ास्थली बना रहा। होता भी क्यों न। आखिर भारत के गले में पराधीनता का पट्टा भी तो प्लासी की पराजय ने ही पहनाया था इसलिए इस कलंक को छोने का वायित्व भी सबसे अधिक इसी भूभाग का था।

गवर्नर ने यूरोपियों के प्रति भारतीयों के मन में पृथा का भाव और उच्च कर दिया। इधर जब भारतीय लोग शिक्षा के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा से विशिकाधिक कीति अर्जित करने लगे तब यूरोपीय लोग भी उनसे शिक्षे-शिक्षे-से रहने लगे। बंगाली लोग शिक्षा के क्षेत्र में अधिक आगे बढ़े, तो शासनाधिकारियों की नज़र भी उनकी तरफ ही अधिक टेही रही।

जब सुरेन्द्र नाथ बनबीं को सिविल सेविस से विकाल दिया गया और दूँगलैंड में अंग्रेजों ने उनके साथ दुर्बंधहार किया तो समस्त भारत का विकित समुदाय विश्वृष्ट हो उठा। उनकी शक्ति संगठन के नये-नये रास्ते ढूँढ़ने लगी।

इस राष्ट्रीय भावना को जगाने में बंकिमचन्द्र चट्ठीं का अभूतपूर्व स्थान है। चट्ठांव उनकी जन्मभूमि थी। सन् १८७२ में उन्होंने 'बंगदर्शन' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया और चार साल तक उसका सम्पादन करते हुए उन्होंने बंगालियों की मोहनिद्रा भंग कर दी। सन् १८८२ में 'आनन्दमठ' प्रकाशित हुआ जिसमें 'बन्देमातरम्' के गीत ने भारतीयों की घमनियों में

नये रक्त का संचार कर दिया। तब जैसे भारत के राष्ट्रीय बीवन में चेतना का नया ज्वार आ गया।

इस तरह धीरे-धीरे जिस नवीन बंगाल का उदय हो रहा था उसमें बंकिम का योग तो था ही, ब्राह्मसमाज के प्रबर्तक राजा राममोहन राय, और शिवनाथ शास्त्री तथा द्वारकानाथ गंधोपात्राय जैसे उनके तुष्ण कार्य-कातजिओं का भी कम योग नहीं था। उत्तर भारत में कान्ति के अग्निमंत्र की जो दीक्षा आर्यसमाज ने दी, पूर्वी भारत में वही दीक्षा ब्राह्मसमाज ने दी। उस समय जितने भी शिक्षित और प्रबुद्ध बंगाली थे वे सब ब्राह्मसमाज से प्रभावित थे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का परिवार भी उन्हीं प्रगतिशील लोगों में था।

ठाकुर परिवार के उत्साही किसोरों ने एक गुप्त संघठन कायम किया था जिसे रहस्यमय बनाए रखने के लिए उसका नाम रखा गया था 'हम-जुपायूहाक'। इस संघठन के जो अनेक नियम थे उनमें प्रधान था मंत्रगुणि—अर्थात् इस संघठन में जो भी कुछ कहा जाएगा, या सुना जाएगा या किया जाएगा, उसे बाहर कभी प्रकट नहीं किया जाएगा।

संघठन की जब बैठक होती, तब मेल के दोनों किनारों पर मुद्रे की खोपड़ी रखी जाती, उसकी आंखों के गड्ढे में दो मोमबत्तियां जलाई जातीं। मुद्रे की खोपड़ी मृत भारत की प्रतीक थी और दोनों मोमबत्तियों को जलाने का अभिप्राय यह था कि मृत भारत में प्राण संचार करके उसके ज्ञान के नेत्र उन्मीलित करने होंगे। इस व्यवस्था के पीछे यही मूल कल्पना थी।

इस गुप्त संघठन की कार्रवाई एक गुप्त भाषा में लिखी जाती। यह गुप्त भाषा भी ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर की ही तैयार की हुई थी।

इस प्रकार के गुप्त संघठन के बाल बंगाल में ही नहीं, सारे भारत के शिक्षित समुदाय में छोकप्रिय होने लगे और बाद में जो कान्तिकारियों के संघठन तैयार हुए उन्हें इसी प्रकार के संघठनों से प्रेरणा मिली।

ठाकुर भवन में जिस गुप्त समिति का जन्म हुआ, बाद में उसमें बैरिस्टर प्रमथनाथ मित्र, अरविन्द घोष और देशबन्धु चितरंजनदास भी शामिल हो गए और सन् १९०२ में इसका नाम 'अनुशीलन समिति' पढ़ गया। यह 'अनुशीलन' शब्द बंकिम के ही एक लेख से लिया गया था।

इसीकी देखादेखी 'आमोनति समिति' और 'तरीर विकास समिति' की भी स्थापना हुई। इस प्रकार की सब समितियों का उद्देश्य एक ऐसा समाज तैयार करना था जिसका प्रत्येक सदस्य स्वस्थ, सदाचारी, नीरोग, और बंधुओं को देश से बाहर भगा देने के लिए कियाशील हो, क्योंकि भारतीय उस समय वह जान गए थे कि इन शुणों के बिना हम अंग्रेजों को नहीं भगा सकते।

इधर बंगाल में जब अभिनवंत की दीक्षा के लिए युवक इस प्रकार साधनारत थे, तब उधर महाराष्ट्र में चाफेकर बन्धुओं ने बीर बासुदेव बलवन्त फड़के के विद्रोहात्मक कार्यों से प्रेरित होकर पूना में 'चाफेकर संघ' की स्थापना की, सावरकर भाइयों ने बनुशीलन समिति की तरह 'अभिनव भारत समिति' की स्थापना की और आर्यसमाज के प्रवर्तक महार्षि दयानन्द सरस्वती के पटुशिष्य द्यामनी कुण्ड वर्मा ने स्वातंत्र्य-संघर्ष में विजय के लिए विदेशों में जाकर अभिनवंत की साधना की।

बंगाल भारत के पूर्व में है और महाराष्ट्र भारत के पश्चिम में है। कान्ति की आराधना के लिए भारत के इन दोनों भागों में जिस प्रकार एक साथ ही प्रथम प्रारम्भ हुए, वह भी आश्चर्यजनक है। महाराष्ट्र के ही एक युवा क्रांतिकारी, शिवाजी के परमभक्त, मराठा शाहूण, सक्षात्ताम गणेश देवस्तकर ने देवधर में आकर वहाँ के जंगलों में युवकों को युद्धाभ्यास के लिए भी प्रेरित किया। पहाड़ के एक ओर शिवाजी के मवाली सैनिक रहते और दूसरी ओर मुगल सैनिक, और दोनों दल सेनाओं के युद्ध का अभिनव करते।

बनुशीलन समिति का एक सुसंबंधित केन्द्र ढाका में भी था। वहाँ प्रतिवर्ष खेलकूद की प्रतियोगिताएं होतीं और नकली लड़ाई का अभिनव होता। बड़े-बड़े हाकिम भी इस नकली लड़ाई को देखने आते। इस लड़ाई में संकड़ों युवक शामिल होते। उनके हाथ में छोटी-बड़ी लाठियाँ होतीं। दोनों प्रतिपक्षी दलों के झण्डे ऊने पेड़ों पर टांग दिए जाते। जो पूसरे पक्ष का झण्डा छीन लाता, वह दल विजयी माना जाता। इस नकली लड़ाई में बहुत-से लोग धावल भी हो जाते और उन्हें एम्बुलेंस में डालकर अस्पताल पहुंचाया जाता। हर लाठी में लाल रंग पुता होता था। जिसके कपड़े में

वह रंग लग जाता वह चायल समझा जाता और उसे एक तरफ बैठ जाता पड़ता। उससे कोई लड़ नहीं सकता था और एम्बुलेंस आकर उसे अस्पताल से जाती।

समिति के सदस्यों में सामरिक अनुशासन पर बल दिया जाता और उस अनुशासन को भीग करने वाले का बाकायदा कोई माफ़ैल होता। समिति के प्रत्येक सदस्य को (क) आच प्रतिज्ञा, (ख) अन्त्य प्रतिज्ञा, (ग) प्रथम विशेष प्रतिज्ञा, (घ) द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा ग्रहण करनी पड़ती और इन प्रतिज्ञाओं के हिसाब से ही समिति में बरिष्ठता का कम चलता। प्रत्येक प्रतिज्ञा 'ओ३८८ अन्देमात्रम्' से प्रारम्भ होकर परमेश्वर, अग्नि, माता, गुरुदेव और नेता को साक्षी मानकर की जाती। ये प्रतिज्ञाएं उत्तरोत्तर कठोर से कठोर होती जातीं और अन्ततः देवप्रेम की बेदी पर सर्वस्व होमने की साधना में चरितार्थ होतीं।

ढाका के रेसकोर्स मैदान में बना तिदेश्वरी का कालीबाड़ी मन्दिर—जिसे सन् ७१ में पाकिस्तानी सेना ने बुलडोजर चलाकर समतल कर दिया, इसी प्रकार के कानिंजीर तह्यों का दीक्षास्थान था। हर साल दुर्गापूजा से एक दिन पहले इस मन्दिर में युवक एकात्र होते और प्रत्यालीढ़ आसन में बैठकर मस्तक पर तलबार और गीता धारण कर दुर्गा की प्रतिमा के सामने भारत की स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा करते। प्रत्यालीढ़ आसन उस पोज का प्रतीक है जो सिह छारा जिकार पर अपट्टा मारने से पहले ग्रहण किया जाता है।

विन दिनों बंगाल में विभिन्न स्थानों पर इस प्रकार गुप्त समितियाँ परनप रही थीं, उन्हीं दिनों लार्ड कर्बन ने १६ अक्टूबर, १८०५ को बंगाल का विभाजन कर दिया। इससे बंगालियों के लग-बदन में आग लग गई। देखते-देखते महाराष्ट्र और पंजाब में भी इस अपमान के प्रतिशोध की आग भड़क उठी।

तभी चारों तरफ विलायती बस्तुओं के बहिरङ्गार और स्वदेशी बस्तुओं के ग्रहण के आन्दोलन ने भी जोर पकड़ा। तब तक महाराजा गोधी का मंच पर आयवन नहीं हुआ था। उस समय हिनेन्द्रलाल राय के गीतों ने और अद्विन्द घोष तथा उपाध्याय बहुवाचक के लेखों ने आग उगलनी सुन कर

दी। अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालने की बड़ी कोशिश की, पर उस समय के स्वदेशी आन्दोलन में पूर्वी बंगाल के मुसलमानों ने भी खूब बढ़-चढ़कर आग लिया। सब विजिष्ट मुस्लिम नेता तथा दाका के नवाब अकातुल्ला बहादुर भी स्वदेशी आन्दोलन के साथ थे।

उस समय रवीन्द्रनाथ ने दोनों बंगों को मिलाने के लिए राष्ट्रीय बन्धन का मिलन मंत्र दिया—हरेक बंगाली एक-दूसरे को राष्ट्रीय बोधता। रवीन्द्र द्वारा रचित 'राष्ट्रीय संगीत' हजारों कंठों से छवित हो उठा।

स्वदेशी आन्दोलन ने सबसे अधिक योर पकड़ा जिला बारीसाल में। अंग्रेजों ने उसे 'कानून लोडने वाला जिला' घोषित कर दिया। सन् १९०६ में १४ और १५ अप्रैल को बारीसाल में बंगीय प्राइवेट सम्मेलन का आयोजन किया गया था, पर उसपर अंग्रेजों ने प्रतिबन्ध लगा दिया। साथ ही 'बन्देमात्रम्' के उच्चारण पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस निषेधाज्ञा की अवहेलना करके बन्देमात्रम् का उच्चारण करने वाले युवकों को कोड़े लगाए गए थे।

जब ४ जुलाई, सन् १९०२ को स्वामी विवेकानन्द इस घराघाम को त्याग कर चले गए तब एक रोमन कैथोलिक पादरी उनके अन्त्येष्टि संस्कार में लायिल होने के लिए बेलूड मठ पहुंचा। उस पादरी को वहाँ कुछ ऐसी आन्तरिक प्रेरणा मिली कि उसने पुनः हिन्दुत्व की दीक्षा ले ली और स्वामी विवेकानन्द के फिरंगी-विजय के ब्रत को पूरा करने का संकल्प किया। इस पादरी का ही नाम था उपाध्याय ऋष्वान्धव। ये भी स्वामी विवेकानन्द के समान ही तेजस्वी और जक्तिमान पुरुष थे। पहले ये ईसाई धर्म से प्रभावित होकर ईसाई बने थे। पादरी बनकर यूरोप की यात्रा की थी। पर स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु ने इनकी काप्तान पलट कर दी। वे बापस हिन्दू बने और स्वामी विवेकानन्द के मिळन को पूरा करने में जुट गए।

इस आजीवन बाल बहूधारी पर अन्त में राजद्रोह का अभियोग चला, पर वह अंग्रेजों की जेल में जाने से पहले इस शरीर की जेल से ही मुक्त हो गया।

यह 'सन्ध्या', 'युगान्तर' और 'बन्देमात्रम्' का थुंग था—इन तीनों पत्रों ने बंगाली जनता को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सभस्त्र कान्ति का आधार

लेने के लिए तैयार किया था ।

अनुशीलन समिति का जैसा गड़ ढाका और चटगांव था, वैसा ही गड़ रंगपुर भी था । रंगपुर में अरविन्द घोष कई साल तक रहे थे । रंगपुर में ही भारत में निर्मित बम का पहली बार परीक्षण हुआ था और उस परीक्षा में प्रफुल्ल चक्रवर्ती का निधन हो गया था ।

अनुशीलन समिति के प्रमुख सदस्य हेमचन्द्र कानूनगो अपनी सब जगीन-जावदाव बेचकर स्वेच्छा से पेरिस गए और वहाँ उन्होंने श्वामजी कृष्ण बर्मी की सहायता से बम बनाना सीखा । पेरिस में ही इस काम के लिए प्रयोग-शाला बनाई गई और श्वामजी ने इसका सारा खर्च दिया था ।

बीमरी सदी के प्रथम दशक के आसपास अनुशीलन समिति के प्रमुख केन्द्र पूर्वी बंगाल में ही थे और ढाका, चटगांव, रंगपुर, फरीदपुर, कुलनाम, जैसोर, कोमिल्ला और कुण्डिया में कान्तिकारियों की शस्त्रास्त्र संग्रह संबंधी गतिविधियां जारी थीं । रंगपुर के इकान चक्रवर्ती वहाँ के चिला मजिस्ट्रेट के पेशकार थे और उन्होंने कान्तिकारियों को उनके कार्य में सहायता के लिए ८० हजार रुपये दिए थे । साथ ही अपने दो पुत्र भी कान्तिकारियों को सौप दिए थे ।

किसफोड़े नामक एक अंग्रेज न्यायाधीश ने १६ वर्ष के किशोर सुशील कुमार को हाथ-पैर बंधवा कर कोडे लगाए, व्योंगि उसने एक अंग्रेज चूह-सवार पुलिस कर्मचारी को उसके दुर्घटनाहार पर धूसा मार दिया था । उसके बाद किसफोड़े को 'कसाई काजी' कहा जाने लगा और कान्तिकारी उससे बदला लेने की ताक में रहने लगे ।

तब किसफोड़े की सुरक्षा के लिए उन्हें बंगाल में बाहर भेज दिया गया । वे बिहार के मुजफ्फरपुर में जिला और सेसन जज बने । पर इस बर्याचारी जज का बंगाल के कान्तिकारियों ने पीछा नहीं छोड़ा । अरविन्द घोष के भाई वरीन्द्र घोष के परामर्श से खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को किसफोड़े की हत्या के लिए भेजा गया । इन दोनों युवकों ने किसफोड़े की गाड़ी समझकर जिस गाड़ी पर बम लेका, उसमें किसफोड़े नहीं था । गाड़ी का एक हिस्सा चूर-चूर ही गया, पर किसफोड़े बच गया । खुदीराम और प्रफुल्ल दोनों पकड़े गए । प्रफुल्ल ने आत्महत्या कर ली और खुदीराम

को प्राणघण्ड मिला। उन दिनों कान्तिकारियों ने अनेक जल्याचारी बंडेजों की और सरकारी गवाहों की हत्या करके उन्हें सबक सिखाया था।

बरविन्द घोष बलीपुर बम काण्ड में विरफ्तार हुए। बैरिस्टर विपिन-चन्द्र पाल ने उनके केस की पैरवी की। बरविन्द छूट गए। और उसके बाद वे चंदन नगर होते हुए पाढ़ीचेरी चले गए जहाँ उन्होंने बाद में अपना सारा जीवन योगसाधना में लगा दिया।

बरविन्द घोष का आज भी बंगला देश के बुद्धिजीवियों पर कितना असर है, इसकी चर्चा एक पृथक् अध्याय में आ चुकी है।

अनुशीलन दल की देखादेखी पूर्वी बंगाल में कान्तिकारियों के और भी अनेक इलंगार हो गए। वे प्रायः राजनीतिक डकैतियां डालकर दल के लिए धनसंग्रह किया करते थे। ऐसे दलों की संख्या बढ़ जाने पर डकैतियों की संख्या भी बढ़ गई और उन दलों की आपसी गुटबन्दियां भी बढ़ गईं।

डकैतियों और आपसी राजनीतिक गुटबन्दियों की यही परम्परा बंगला देश को विरासत में मिली है।

२३ विसम्बर, १९१२ ई० को कान्तिकारियों के इतिहास में एक बेजोड़ घटना बटी जब दिल्ली के चांदनी चौक में लाड़ हाड़िज के जलूस पर बम फेंका गया। यह यह जलूस चांदनी चौक के बांदाघर से लालकिले की तरफ जा रहा था, तब पंजाब नेशनल बैंक की दूसरी मंजिल से किसी-ने बड़े लाठ पर बम फेंका, जिससे उन्हें मामूली चोट तो आई, पर वे बाल-बाल बच गए। इससे सारे ब्रिटिश साम्राज्य में तहलका मच गया।

किसने फेंका था यह बम?

इस सारे काण्ड की योजना के मूल-मूलधार तो राष्ट्रविहारी बोत थे जो बाद में आपान चले गए, पर बम फेंकने वाला हाथ किसका था, इसपर सवाँ कान्तिकारियों में भी बहा विवाद है।

अभी पिछले दिनों दिल्ली के प्रसिद्ध कान्तिकारी लाला हनुमन्त सहाय का स्वर्गवास हुआ है। उनके स्वर्गवास के पश्चात् उनके सम्बन्ध में लिखे गए संस्मरणों में यह बात बार-बार जोर देकर कही गई कि लाड़ हाड़िज पर बम फेंकने वाला कौन था, यह रहस्य केवल लाला हनुमन्त सहाय ही जानते थे और उन्होंने मरते दम तक इस रहस्य पर से पर्दा नहीं उठाया।

पर हिन्दी के एक वरिष्ठ पत्रकार और कानूनिकारियों के इतिहास के सतर्क अध्येता श्री तारिणी बाबू<sup>१</sup> का कहना है कि वह व्यक्ति था वसन्त विश्वास, जो नदिया जिले के पौड़ागाल नामक गांव का निवासी था और मन्मथ विश्वास का भाई था। इस वसन्त विश्वास ने ही औरत के देश में वह वर्म फॉका था।

इस घटना के तुरन्त बाद वसन्त विश्वास लाहौर चले गए और रास-विहारी बोस अपने कार्यस्थान देहरादून पहुंच गए। पुलिस अपनी सारी ताकत लगाकर भी घटना के नामक को पकड़ नहीं सकी।

सत्य क्या है, वह शायद सबा ही रहस्य बना रहेगा, क्योंकि उस घटना से सम्बद्ध प्रामाणिक अपित्त जब शायद ही कोई जीवित बचा हो।

मैंने इस घटना का इस कारण उल्लेख किया है कि प्राप्त विवरण के अनुसार इतनी महत्वपूर्ण घटना में भी मुख्य हाथ बंगभूमि के ही एक बीर सपूत का था।

इससे पूर्व दिसम्बर, १९११ में सआट् पंचम जार्ज भारत आए। कानूनिकारियों के आन्दोलन से दायित होकर उन्होंने बंगभूमि को रद्द करने की घोषणा की और भारत की राजधानी भी कलकत्ता से बिल्कुल आ गई।

तब तक बंगाल के कानूनिकारी अनेक ट्रुकियों में बंट चुके थे। हर जिले में दो-दो, तीन-तीन दल बन गए थे। जो नेता जेलों में जाने से बच गए थे, उनमें कार्यपद्धति और नेतृत्व के आदाऊ के प्रति मत्तैक्षण नहीं था। अनुशीलन समिति के कई लोग सआट् पंचम जार्ज के आमने के उपलक्ष्य में कोई बड़ा कानूनिकारी कार्य करके सब दलों को एकत्र करना चाहते थे। पर दलों में आपसी बैमनस्य इतना था कि वे इस प्रकार की किसी योजना पर भी सहमत नहीं हो सके।

तब कानूनिकारियों से सहानुभूति रखनेवाले राष्ट्रीय नेताओं ने सलाह दी कि अब कानूनिकारियों की छान्ति को संगठित करने का एकमात्र उपाय यही है कि हिसात्मक कार्यों को सर्वथा स्थगित कर दिया जाए और जनता

१. 'भारत में सकरत जननियों की भूमिका' (पृष्ठ २३०) — डॉ. तारिणीशंकर चक्रवर्ती। इस अव्याय की सामग्री में उस पुस्तक से अच्छी लक्षणता निली है, जिसके लिए लेखक लारिणी बाबू का लाभारी है।

की सेवा में सारी शक्ति लगा दी जाए ।

सन् १७५७ ई० के पश्चात् सन् १८१२ तक के बेहु सौ साल की अवधि में अंग्रेजों की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए जैसा निरन्तर सशस्त्र संघर्ष इस देश में हुआ, उसकी मिसाल और कहीं नहीं मिलेगी ।

उसके बाद सशस्त्र संघर्ष कुछ समय के लिए रुक गया ।

महात्मा गांधी के जाने के बाद सन् १९१९ से अंग्रेजों के विरुद्ध सत्याग्रह का बोलबाला हो गया । किन्तु ही कान्तिकारी उसमें शामिल हो गए । परन्तु जब एक साल के अन्दर महात्मा जी के वचनानुसार स्वराज्य नहीं मिला तो क्रान्तिकारियों ने पुनः हथियार उठा लिए । परिजामस्वरूप काकोरी घट्यंत्र, लाहौर घट्यंत्र, और बाराणसी घट्यंत्र के नेताओं की बलिदानी गाथाएं सामने आईं । इन सशस्त्र काण्डों की चरम परिणति हुई चटगांव अस्त्रागार की लूट के काण्ड में ।

फिर १९४२ का 'करो या मरो' आनंदोलन चला । अबस्तु क्रान्ति की उस महत्वा से कैसे इन्कार किया जा सकता है !

पर मुख्य बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द पौज के इमाल और कोहिमा तक पहुँचने की जो तीव्र प्रतिक्रिया भारतीय संनिकों में और जनमानस में दिखाई पड़ी, उससे बंग्रेज हवा का रुक पहचान गए और बन्त में तेजी से बदलते घटनाक्रम के अन्तर्गत १५ अगस्त, सन् १९४७ को वे भारत छोड़कर चले गए ।

प्लासी की लड़ाई बंगभूमि में हुई जिससे भारत की पराधीनता प्रारम्भ हुई । सन् १९४७ के बदर की तुम्हारा बंगभूमि (बैरकपुर) से हुई । नोआखाली काण्ड भी बंगभूमि में हुआ जिसके कारण पाकिस्तान बना । यही बंगभूमि पराधीनता और परावध के कलंक को मिटाने के लिए लगातार बेहु सौ साल तक सशस्त्र संघर्ष की हरावल करती रही । पाकिस्तान के विघटन की शुरुआत भी इसी बंगला देश से हुई । अब क्या भविष्य के गम्भीर कुछ और भी है जिसका परीक्षण आग की लपटों से चिरे बंगला देश में चल रहा है ? क्या इस समय महादेश को पुनः एकमूल में बांधने की प्रक्रिया इसी भूमि से प्रारम्भ होगी ?

## स्वप्न की मंजिल

सारा रंगमाटी पानी की एक चिंचाल झील में हूँवा है—नील जल का विस्तार हुट्ठि के क्षितिज को बांध लेता है। कप्ताई में कर्णफूली नदी पर बांध बनाने के लिए रंगमाटी का हो गया बलिदान। जहाँ पहले जंगल और मैवान था, वहाँ अब पानी ही पानी है। रंगमाटी की बस्ती रह गई है केवल सड़क के किनारे-किनारे और झील के एक सिरे पर।

ब्राह्मार में पैठ का दिन है, इसलिए बादिवासी स्त्री-पुरुषों की खूब भीड़ है।

कुछ दुकानें मारवाड़ियों की भी हैं। घोती पहने भी दो-तीन व्यक्ति दिखाई दे जाते हैं।

एक जगह बोड़े दिखाई दिया—‘जीवक औषधालय’। वैद्यराज का नाम रवीन्द्रनाथ राय। वैद्यराज घोतीघारी हैं, पर उनके शाहकों में कोई घोती-घारी न वर नहीं आता।

हिम्मत करके दुकान के अन्दर प्रवृत्त कर पूछता हूँ—“राजबाड़ी और आदृ मूर्खियम किशर है ?”

“जहाँ से लगभग ४-५ मील होगा।”

“जाने का साधन ?”

“नाक से जा सकते हैं, या स्कूटर से।”

हाँ, रंगमाटी में कुछ स्कूटर भी चलते दिखाई दिए।

एक स्कूटर किया। उसने बस्ती से लगभग ५ मील दूर आकर सड़क पर ही मुखे उतार दिया और जंगल की एक पगडण्डी की ओर इशारा करके कहा कि यही राजबाड़ी का रास्ता है।

मैं छिक्रता हूँ। बन की सुनसान पगडण्डी पर एकाकी जाने में कहीं

कोई सतरा तो नहीं ?

पर पूछूँ किससे ? आसपास कोई विज्ञाई नहीं देता ।

इतनी दूर आया हूँ तो अब बापस नहीं लौटूँगा ।

बापस जाने का साधन भी नहीं है । स्कूटर बाला जा चुका है ।

बन-पथ पर बड़ चलता हूँ ।

रास्ते की बीरानी बहशत पैदा करती है ।

कहीं कोई जंगली जानवर...या कोई असामाजिक प्राणी...इस एकान्त का लाभ उठा ले तो संसार में कोई जान भी नहीं याएगा कि एक पत्तकार कभी इस पगड़ंडी पर जा रहा था ।

सर्दियों की धूप का सुनहरा दिन है । जश्न का आकर्षण खींचि लिए जा रहा है ।

जंगल धना होता जाता है ।

खतरे की संभावना और बढ़ती जाती है ।

अपने बांख-कान छोकने रख मैं एकाकी आवे बढ़ता जाता हूँ ।

चलना ही चर्चा है । 'उस पार' का रहस्य पाए बिना मंजिल नहीं मिलेगी ।

ऊँचे-ऊँचे दोसों के जंगल में से गुच्छरती पगड़ण्डी अचानक खरग । आगे पानी ही पानी ।

अब ?

पगड़ण्डी जहां खत्म हो रही थी वही एक और छोटी-सी शोंपड़ी दिखी । शोंपड़ी में से एक बूढ़ा निकली ।

पानी में छोटी-सी नाव पड़ी थी जिसे एक आदमी आसानी से चला सकता था । बुदिया ने चप्पू संभाला और मुझे नाव में बैठने का इशारा किया । नाव चल पड़ी ।

पानी के पार सामने पहाड़ी थी ।

'राजबाड़ी' ? —मैंने पूछा ।

बुदिया ने पहाड़ी की ओर इशारा किया और नाव लेकर बापस लौट पड़ी । मैं पहाड़ी पर चढ़ने लगा ।

पहाड़ी बहुत ऊँची नहीं थी । ऊपर पहुँचने पर समतल मैदान, वृक्षों का

कुंज और बातावरण में स्निग्ध शानि ।

भिक्षु अपने-अपने पाल लेकर भोजनागार में जगा हो रहे थे ।

गीराम वर्ण, सुन्दर आकृति और परिपूष्ट देह ।

भिक्षु के बेला में और प्रलोभनीय तरीके गठन बाले किलोरों और तहसों को भोजनागार में एकत्र देखकर बांले चुड़ा थईं ।

बजनवी को आया जानकर एक तरुण भिक्षु, जो शिक्षित था और शिष्ट व्यवहार में पटु था, पास आया ।

“कहाँ से आए हैं ?”

“परदेसी पर्यटक हूँ । राजबाड़ी देखने आया हूँ ।”

तरुण अपने प्रधान भिक्षु के पास ले गया ।

वे बृद्ध ये और एक आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे ।

शायद अपने एकान्त विश्राम के अणों में खलल से कुछ सिन्न हुए हों । पर परदेसी पर्यटक से बातालाप किए बिना गति नहीं ।

पता लगा, ये सब चकमा लोग हैं, इस प्रदेश के मूल निवासी ही नहीं, यहाँ के कभी पट्टाभिषिक्त राजा के सजातीय भी ।

चकमा राजा भूवनचन्द्र मोहन का सन् १८३६ में अभिषेक हुआ था, जिसका साथी एक शिलालेख अभी तक वहाँ राजा की आवश्य प्रतिमा के साथ ही लगा है । उस बात को भी जब १३६ वर्ष होते हैं । उनके पुल हुए नलिनाक्षराय जिनकी तस्वीर मैंने म्यूजियम के द्वार पर लगी देखी थी । उसके बावजूद, लगता है, कि अंग्रेजों ने रंगामाटी की इस चकमा रिवासत को सत्य करके अपने राज्य में मिला लिया और उसका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया ।

“राजप्रासाद कहाँ है ?”—मैंने पूछा ।

बृद्ध भिक्षु ने कहा—“वह तो कभी का गिर चुका है । अब तो यहाँ बौद्ध भिक्षुओं का विहार है और इस विहार का नाम ही राज-विहार है ।

“राजबाड़ी किस स्थान का नाम है ?”

“राजबाड़ी भी इसी स्थान को कहते हैं । कभी यहाँ राजा की बाड़ी (निवासस्थान) थी न । अब तो यह भिक्षुओं की बाड़ी है । रंगामाटी में यहीं

विहार सबसे पुराना और सबसे प्रमुख है।”

“यहाँ कितने भिक्षु रहते हैं ?”

“बहसी ।”

“उनकी दिनचर्या ?”

“यहीं पूजा-पाठ, धार्मिक गत्यों का स्वाध्याय और उपस्था ।”

बंगला देश के, और खासकर इस प्रदेश के, विलक्षणी स्वरूप का और सशस्त्र कान्तियों में इस प्रदेश की भूमिका का, मुझे ध्यान था, पर बीद्र भिक्षु से उस प्रकार की बात करना, सो भी प्रथम बार्ताकाप में ही, असंगत होता इसलिए मैं चक्रमा लोगों के ही इतिहास और संगठन आदि के बारे में बातें करता रहा ।

पता लगा कि इस शूरबीर जाति के लोगों की संख्या ६ लाख से कम नहीं है । ये बंगला देश, त्रिपुरा, ब्रह्माचल और भिजोरम से लेकर बर्मा के सीमान्त तक फैले हुए हैं । कुछ विशित चक्रमा ईसाईमत की फ़रण में भी गए हैं, पर प्रधान भिक्षु का दावा था कि आजादी के बाद वे सब बापस बीद्रघर्म अंगीकार कर रहे हैं ।

यह शूरबीर जाति यदि संगठित हो सके तो चीन के प्रसारजादी कम्प्यु-नियम के विरोध में और इस्लाम के नाम पर धर्मान्वयता तथा असामाजिकता को प्रश्न देने वाले तत्त्वों के विरोध में बड़ा उपयोगी हथियार सिद्ध हो सकती है ।

चक्रमा राजा का प्रासाद तो घिर चुका, पर उस समय का एक पूजा-मृह अभी तक विद्यमान है । मन्दिर की छत एक ओर से टूट रही है । कुछ दीवारें भी जीर्णता की ओर अवसर हैं, पर मन्दिर के बीच में भगवान बुद्ध की पीतल की विशाल प्रतिमा ज्यों की ल्यों है । प्रतिमा की भव्यता का नया कहना ? और जब एक ओर से भव्याल्लोत्तर सूर्य का प्रकाश चंदोवे से छन-कर प्रतिमा पर पढ़ता है, तो वह अपनी दीप्ति में स्वर्ण को भी लबा देती है ।

एक ‘संदेशना हाल’ बना हुआ है जो सम्मिलित प्रार्थना और उपदेश के काम आता है । बरसात में बीद्रभिक्षुओं की चहल कदमी में कठिनाई न हो, इसके लिए ‘चंक्रमण हाल’ की व्यवस्था एक नया ‘आशदिया’ लगा ।

पता लगा कि पान ही, दूसरी पहाड़ी पर, एक विहार और भी है। राज-विहार बाले उस दूसरे विहार का उल्लेख करने में संकोच जनुभव कर रहे थे। दोनों में प्रतिबन्धिता रही होगी। फिर यह राज विहार पुराना, मान्यता प्राप्त। किसी दूसरे विहार को अपने यश का कुछ हिस्सा छीनते कींते बद्दीत करे। पर जब ऐने चक्रमा लोगों की आविकासी कलाकृतियों और इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से म्यूजियम के बारे में आप्रह करके पूछा, तब अनिच्छापूर्वक उन्होंने दूसरी पहाड़ी की ओर संकेत कर दिया, जहाँ म्यूजियम के साथ वह नया विहार भी बना हुआ था। यह राज-विहार था, तो दूसरे विहार का नाम या बन-विहार।

इस पहाड़ी के चारों ओर पानी था। दूसरी पहाड़ी के चारों ओर भी पानी था। समुद्र के दो टापुओं की तरह दोनों पहाड़ियाँ आमने-सामने झील के पानी में खड़ी थीं।

दोनों पहाड़ियों के बीच में जलधारा को पार करने के लिए बांस का पुल बना था। सर्वथा जीर्णशीर्ण। दोनों विहार अपने अलग-अलग बन-यथों की धीरियों से सड़क से जुड़े थे। इसलिए इन दोनों विहारों के मध्य पार-स्परिक आवागमन नगद्य था।

मैं बांस के पुल से दूसरी पहाड़ी की ओर चढ़ा।

पुल जीर्णशीर्ण था ही। धोखा दे सकता है, इसकी कल्पना नहीं थी।

अचानक एक बांस पर पांच पट्टे ही उसने धोखा दे दिया।

मैं झील के पानी में गड़म।

निकट ही था कि पक्कार-प्रवर को 'ऐडवेंचर' की आदत का पुरस्कार मिल जाता और इस अज्ञात स्थान पर उसे सहज जल-समाधि मुलझ हो जाती।

पर जन्मपत्री के ग्रह अभी इतने प्रतिकूल नहीं हुए थे।

अचानक एक दूसरा बांस हाथ में आ गया। यह इतना कमज़ोर नहीं था। एकान्त जल-समाधि बेला को उसी बांस ने टाल दिया।

पुल के पार आकर खोड़ी देर तक डर के मारे कांपता रहा। फिर हसरत-भरी निशाहों से उस बांस को देखा जो भौके पर मेरी जीवन-नीका बन गया था।

शरीर को अपनी ही आँखों से सहलाता रहा कि सही-सलामत हूँ या नहीं ।

फिर जूता, चुराथ, पैष्ट सब उतार कर निचोड़े । गनीमत थी कि कोट गीला होने से बच गया था । वहीं तो गुफलिसी में और आठा गीला होने वाली बात हो जाती ।

आध घण्टे तक अपने कपड़े छूप में कैलाये, उस एकान्त मुनसान बब्य बातावरण में, टाठू में एकाकी राविस्तन कूसों की तरह, मैं अपनी किस्मत पर हँसता भी रहा, इतराता भी रहा और एकाकीपन के बोझ को सहता भी रहा ।

बभी मरण-घोग नहीं है ।

मैं अमृत का प्याला पीकर आया हूँ—अमृत-मुत्र जो हूँ ।

कपड़े कुछ फरियाले हुए । गीली पैष्ट पहनकर ही पगडण्डी पर आये बढ़ लिया । पर जूते बभी पहनने लायक नहीं हुए थे । उन्हें हाथ में उठा लिया ।

पांवों के तलों पर पगडण्डी की कंकरियां चूमने लगीं । टहनियों के ढंठल भी । गनीमत थी कि आस-वास कटिदार पेड़-पौधे नहीं थे । नहीं तो इस शेर के सच होने की जीवत आ जाती—

बला से पैर गर छिद गए, किसी के काम तो आए,

पड़े मे खुश-खब कांटे, जाने कवसे वियादां में ॥

—पर खुशक लबों को तर करने की सुशकिस्तती हरेक की किस्मत में तो नहीं होती ।

इसी अस्त-ध्यस्त हालत में बन-विहार पहुँच गया ।

जूते बाहर छूप में सूखने के लिए रखे और इस विवशता की अद्दा के प्रतीकस्वरूप नगे पांव उनके संदेशना हाल में कदम रखा ।

प्रश्नान स्वविर का प्रबचन चल रहा था । सामने कुछ सफेद-पोश गुवक बैठे थे जिनमें एकाध धोती पहने भी थे जिससे लगता था कि वे हिन्दू होने । प्रबचन समाप्ति पर था, या मेरे अकस्मात्-प्रवेश से बद्द हो गया था—नहीं कह सकता ।

सबकी दृष्टि मुझपर पड़ी ।

हाल सूब खुला था और हथाहार भी । शायद विहार के स्थापकों का हृदय भी इतना ही खुला हो । पर एक अन्तर अवश्य देखा । राज-विहार में कोई अधिकृत सफेद कपड़ों में नहीं था, सब पीत बस्तों में थे, पर यहाँ बन-विहार में प्रधान स्थाविर को छोड़कर और कोई पीत बस्त्रधारी नहीं था, सब श्वेत बस्त्र पहने थे । क्या राज-विहार में सब दीक्षाप्राप्त युवक ही थे ? और यहाँ अदीक्षित भी था सकते थे ? कौन जाने !

मैंने प्रधान स्थाविर को प्रणाम किया ।

“कहाँ से आए हो ?” — उन्होंने पूछा ।

“मलवेशिया से ?”

“माझ ?”

“अच्छुलकादिर ।”

“बौद्ध धर्म के बारे में कुछ जानकारी है ?”

“जानकारी उतनी नहीं जितनी सहानुभूति है ।”

फिर मैंने ही बात का रुच बदलने के लिए वहाँ की गतिविधियों के बारे में पूछताछ शुरू कर दी ।

राज-विहार जितना विस्तार बन-विहार का नहीं है । गतिविधियाँ भी संक्षिप्त हैं । मन्दिर और उसकी प्रतिमा भी उतनी भव्य नहीं हैं । जितनी भूमि है उसमें विहार की गतिविधियों के अग्रिम विस्तार की गुजाइश है ।

पास ही म्यूजियम है जो उस दिन रविवार होने के कारण बन्द था । म्यूजियम के बाहर बगल-बगल दो तोपें लड़ी थीं । तोपें असली होने पर भी अब म्यूजियम की ही बस्तु थीं ।

एक और अंगिसा-सर्वस्व बौद्धधर्म के साधकों का साधना-स्थल, यह विहार ! और उसीकी बगल में ये तोपें !

मुझे सन् १९६८ में आए स्वप्न के उस मन्दिर की याद आ गई जिसमें दुर्गा की प्रतिमा के सामने एक पेटी में नापाम बग का पाठड़र रखा था और दूसरी पेटी में अणुवम का एण्टीडोट ।

सूर्यास्त से पहले ही मैं इस रहस्यलोक से निकल आया ।



रंगामाटी से जब लौटकर चट्ठांव आ रहा था तब रास्ते में यही विचार  
मन में आता रहा कि क्या यही नहीं थी मेरे स्वप्न की मंजिल ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने जन्मदिन के सम्बन्ध में कभी एक कविता  
लिखी थी । वही कविता याद आ रही है—

प्रथम दिन के सूर्य ने  
प्रदन किया था  
अस्तित्व के नये आविभाव से—  
कौन हो तुम ?  
मिला नहीं उत्तर,  
वर्ष पर वर्ष बीत गए ।  
दिवस के अन्तिम सूर्य ने  
शेष प्रश्न पूछा  
पश्चिम-पारावार के तीर पर  
निश्चिन्द्र सांक के समय—  
कौन हो तुम ?  
पाया नहीं उत्तर ।

• • •



## किशनलाल पेटेल

+

जन्म : १० अप्रैल, १८९७।

शिक्षा : गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से  
वेदालंकार तथा आगरा विश्व-  
विद्यालय से एम० ए०।

रस्ता : पयंटन, लेजन, प्रबलन।

यात्रा : कश्मीर से कन्याकुमारी और  
गोआ से मणिपुर तक। पाण्डिम  
शिल्प-अभियान। कैलाश—  
मानसरोवर—शिखर तिक्कत,  
नेपाल, बंगला देश, मारीशस,  
हिमालय का विस्तृत भ्रमण।

प्रकाशित पुस्तकें : 'जेव यातना के छह मास'

'जातिभेद का अभिज्ञाप'

'गोंधी जी के हास्य-विनोद'

सम्प्रति : सहायक सम्पादक, दैनिक हिन्दु-  
स्तान, नई दिल्ली।

## कुछ और पठनीय पुस्तकें

जिनके साथ जिया	बमृतलाल नाथर
मैंने स्मृति के दीप जलाएँ	ओरामनाथ सुमन
आवारा मसीहा	विष्णु प्रभाकर
इन्दिरा गांधी : सफलता के वर्ष	के० ए० अच्छास
वया भूलूँ क्या याद करूँ	बच्चन
मीड़ का निर्माण फिर	बच्चन
चहने सूरज का देश (जापान)	प्राणनाथ सेठ
रुसी सफरनामा	बलराज साहनी
मेरी फिल्मी आत्मकथा	बलराज साहनी
मेरा जीवन-संघर्ष	बद मेहना
अभिनेत्री की आपदीती	हंसा बाड़कर
हमारे बीर सेनानी	सुदलैन चोपड़ा
भारत के बीर सपूत्र	सावित्री देवी बर्मा
यादें	पद्मिनी मेनन
जवान : राष्ट्र का गौरव	ज्यामिति ह 'शिश'
ऐवरेस्ट की चुनीती	एच० धी० एस० अहलूवालिया



राजपाल एण्ड सन्झ, कश्मीरी गेट, विल्ली